जुलाई–2021
वर्ष–85 । अंक –7। ₹–19 प्रति । ₹–220 वार्षिक

धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

गायत्रीतीर्थ शान्तिकुञ्ज
स्वर्ण जयंती वर्ष
1971-2021

गुकारस्त्वन्धकारस्तु रुकारस्तेज उच्यते ।
अन्धकार निरोधत्वात् गुरुरित्यभिधीयते ॥

20 कैसे करें ध्यान ?
25 जीवन की सही समझ
34 ऊर्जा-प्रसारण का केंद्र होते थे मंदिर
59 श्रीरामचरितमानस में संत-असंत की महिमा

अखण्ड ज्योति 75 वर्ष पूर्व

जुलाई – 1946

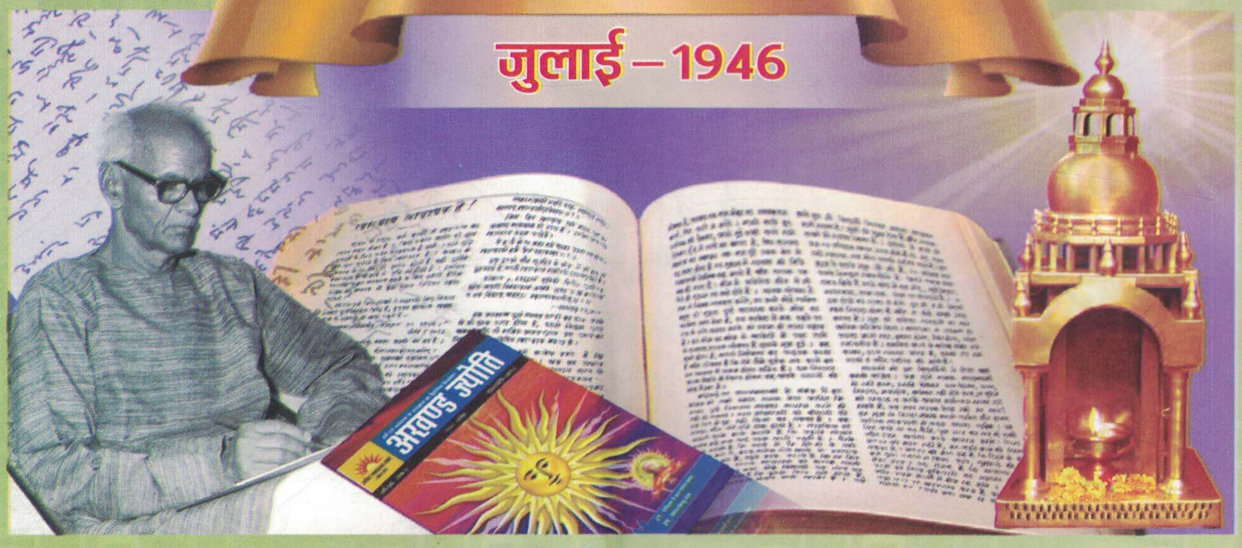

तपस्या से ही अभीष्ट उद्देश्य प्राप्त होता है।

भगीरथ तप करके गंगा को मृत्युलोक में लाए, पार्वती जी ने तप करके शिव को वर रूप में पाया, ध्रुव ने तप करके अचल राज्य पाया, एक नहीं अनेकानेक प्रमाण इस बात के मौजूद हैं कि तप से ही संपदा मिलती है। मनोवांछाएँ पूर्ण करने का एकमात्र साधन तप ही है–परिश्रम एवं प्रयत्न ही है। क्या देव, क्या असुर जिसने भी ऐश्वर्य पाया है, वरदान उपलब्ध किए हैं तप के द्वारा पाए हैं। अनंत संपदाओं का ढेर अपने चारों ओर बिखरा पड़ा हो तो भी कोई उसे तप बिना नहीं पा सकता। समुद्र के अंदर अतीत काल से अनेक रत्न छिपे पड़े थे। उनका अस्तित्व किसी पर प्रकट न था, किंतु जब देवता और असुरों ने मिलकर समुद्रमंथन किया तो उसमें से चौदह अमूल्य रत्न निकले। यदि मंथन न किया जाता तो चौदह क्या चौथाई रत्न भी किसी को न मिलता। प्रयत्न, परिश्रम और कष्ट सहन करने से ही किसी ने कुछ प्राप्त किया है। अकस्मात् छप्पर फाड़कर मिल जाने के कुछ अपवाद कहीं-कहीं देखे और सुने जाते हैं, परंतु यह इतने कम होते हैं कि उन्हें सिद्धांत रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। पूर्व जन्मों का संचित पुण्य एक दम कहीं प्रकट होकर कुछ संपदा अकस्मात् उपस्थिति कर दे ऐसा होना असंभव नहीं है, कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि किन्हीं व्यक्तियों को बिना परिश्रम के भी कुछ चीज मिल जाती है, परंतु इसे भी मुफ्त का माल नहीं कहा जा सकता। पूर्व संचित पुण्य भी परिश्रम और कष्ट सहन द्वारा ही प्राप्त हुए थे। इन भाग्य से अकस्मात् प्राप्त होने वाले लाभों में भी अप्रत्यक्ष रूप से परिश्रम ही मुख्य होता है। भाग्य का निर्माण तपस्या से ही होता है।

—"श्रीराम शर्मा आचार्य"

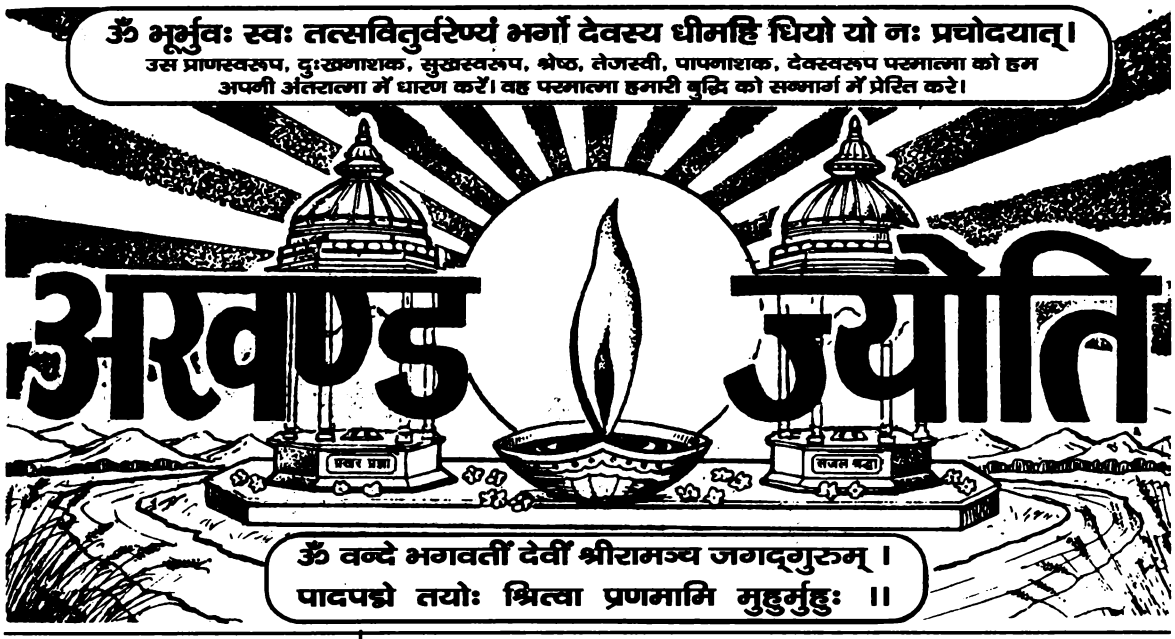

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।
उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

अखण्ड ज्योति

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम्।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940,2402574
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	: 85
अंक	: 07
जुलाई	: 2021
आषाढ़-श्रावण	: 2078
प्रकाशन तिथि	: 01.06.2021
वार्षिक चंदा	
भारत में	: 220/-
विदेश में	: 1600/-
आजीवन (बीसवर्षीय)	
भारत में	: 5000/-

सृजन

आध्यात्मिक प्रयासों की परिणति आत्मसत्ता के परमात्मसत्ता के साथ मिलन के साथ परिपूर्ण हो पाती है। आध्यात्मिक साधना में हमारे अस्तित्व में और परमात्मा के अस्तित्व में अंतर नहीं रह जाता। दोनों पर एक जैसा रंग चढ़ जाता है या यों कहें कि हमारा व्यक्तित्व भी परमात्मा के रंग में रँग उठता है। सुनने में-जानने में ऐसा होना अत्यंत आकर्षक लगता है, पर इसके साथ का सत्य यह भी है कि हमारे व्यक्तित्व पर ईश्वरीय उपस्थिति का रंग चढ़े, उसके लिए यह आवश्यक है कि हमारे व्यक्तित्व की धुलाई हो सके।

जिस प्रकार कपड़े पर नया रंग चढ़ाने के लिए, पहले उसकी गंदगी को धोना और फिर उस पर नया रंग चढ़ाना संभव हो पाता है—उसी प्रकार, मानवीय व्यक्तित्व पर दैवी अनुग्रह का रंग चढ़ाने से पहले व्यक्तित्व की धुलाई और रँगाई जरूरी हो जाती है। यहाँ धुलाई की तुलना प्रायश्चित से व रँगाई की तुलना साधना से कर सकते हैं। हमारे चित्त पर, अवचेतन पर, पूर्वजन्मों के किए गए कुकर्मों, कुसंस्कारों के मैल की परत चढ़ जाती है। इस मलिनता को दूर करने के लिए, प्रायश्चित विधान का स्वरूप हमारे शास्त्रों में निर्धारित किया गया है। पाप का प्रकटीकरण, पाप को हलका करता है और चित्त पर छाए हुए कलुष से मुक्ति भी दिलाता है। जिस प्रकार धुलाई का कार्य धोबी का है, उसी प्रकार इन पापों का प्रायश्चित, गुरु जैसी मार्गदर्शक सत्ता के सान्निध्य में करने की परंपरा है। प्रायश्चित साधना द्वारा इन कर्मों के बोझ से मुक्त होते ही—व्यक्तित्व पर साधना द्वारा दैवी रंग चढ़ा देने का प्रावधान है। इन दोनों प्रक्रियाओं के पूर्ण होते ही व्यक्तित्व प्रकाशित हो उठता है और अंतर्मन पर ईश्वरीय प्रकाश का रंग चढ़ जाता है। ❑

▶ 'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष ◀

विषय सूची

- आवरण—1 1
- आवरण—2 2
- सृजन 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  व्यक्तित्व विकास आधारित शिक्षा 5
- इंद्रियसंयम—सुख-शांति का ठोस आधार 7
- सद्गुणों का समुच्चय ही ईश्वर है 9
- **पर्व विशेष**
  वैश्विक परिवर्तनों की धुरी शांतिकुंज 12
- स्थितप्रज्ञ के लक्षण 14
- गुरु को अर्पित श्रद्धा-सुमन 16
- ब्रह्मांडस्वरूप शिव को प्रिय है
  काशी और श्रावण मास 18
- कैसे करें ध्यान? 20
- वन्यजीवों के साथ सहजीवन है जरूरी 23
- जीवन की सही समझ 25
- चाय का श्रेष्ठ विकल्प प्रज्ञा पेय 27
- जीवन का परम लक्ष्य 28
- पदार्थ से चेतना की ओर 30
- ग्रामीण भारत एवं
  आधुनिक भारतीय चिंतक 32
- ऊर्जा-प्रसारण का केंद्र होते थे मंदिर 34
- **चेतना की शिखर यात्रा—226**
  गायत्री योग का प्रवर्तन 36
- कर्मफल सिद्धांत एवं पुनर्जन्म 38
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—147**
  प्राचीन भारत में शल्य तंत्र 40
- जीवन देवता की साधना-आराधना 43
- पर्यावरण के प्रति समर्पण 45
- **युगगीता—254**
  आशाओं की फाँसी में जीवन गँवाते हैं
  आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य 47
- प्रसन्नता का राजमार्ग 49
- जल-संरक्षण का अभियान
  हर व्यक्ति का अभियान बने 51
- **परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी—2**
  कामधेनु है गायत्री (उत्तरार्द्ध) 53
- **विश्वविद्यालय परिसर से—193**
  श्रीरामचरितमानस में संत-असंत की महिमा 59
- **अपनों से अपनी बात**
  गुरुवर द्वारा प्रदत्त
  दायित्वों को पूर्ण करने का पर्व (गुरु पूर्णिमा) 64
- सादर समर्पित श्रद्धा हमारी (कविता) 66
- आवरण—3 67
- आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

ऋषियुग्म की अवतारी सत्ता

जुलाई-अगस्त, 2021 के पर्व-त्योहार

सोमवार	05 जुलाई	योगिनी एकादशी	रविवार	08 अगस्त	हरियाली अमावस्या
शुक्रवार	09 जुलाई	ज्येष्ठ अमावस्या	शुक्रवार	13 अगस्त	नाग पंचमी
सोमवार	12 जुलाई	रथयात्रा	शनिवार	14 अगस्त	सूर्य षष्ठी
शुक्रवार	16 जुलाई	कर्क संक्रांति/सूर्य षष्ठी	रविवार	15 अगस्त	स्वतंत्रता दिवस/ तुलसी जयंती
मंगलवार	20 जुलाई	देवशयनी एकादशी			
शनिवार	24 जुलाई	गुरु पूर्णिमा/व्यास पूर्णिमा	बुधवार	18 अगस्त	पवित्रा एकादशी
मंगलवार	27 जुलाई	गजानन संकट चतुर्थी	रविवार	22 अगस्त	श्रावणी पूर्णिमा/ रक्षाबंधन
बुधवार	04 अगस्त	कामिका एकादशी	सोमवार	30 अगस्त	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶'गृहे-गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

व्यक्तित्व विकास आधारित शिक्षा

स्वतंत्रता संग्राम के दिनों से लेकर आज तक, जब भारत को आजादी अर्जित किए कई दशक गुजर चुके हैं— इस अवधि में भारतीय शिक्षाव्यवस्था, चुनौतियों के एक महत्त्वपूर्ण दौर से गुजर चुकी है। इस दौरान अनेक नूतन समस्याओं का सामना भी भारतीय शिक्षा प्रणाली को करना पड़ा, जिनमें से अनेक समस्याओं का सफल समाधान भी समय रहते संभव हो सका, परंतु आज भी न जाने ऐसे कितने आयाम हैं, जिन पर भारत के शैक्षिक भविष्य को देखते हुए एक गंभीर चिंतन-मनन किए जाने की आवश्यकता है।

परतंत्रता के दिनों में भारत की शिक्षा प्रणाली वह थी, जो हम पर एक औपनिवेशिक उद्देश्य को सिद्ध करने के भाव से थोपी गई थी। न तो उसका संबंध भारतीय सांस्कृतिक विरासत से था और न ही उसके उद्देश्य भारतीय जनहित में थे। आजादी मिलने के साथ-साथ बहुत-सी सामाजिक समस्याएँ भी भारत को विरासत में मिलीं, जिनका स्पष्ट प्रभाव शिक्षाव्यवस्था के ऊपर देखा जा सकता था। अर्थव्यवस्था चरमरा रही थी, एक बड़ा तबका पूर्णतया निरक्षर था और गरीबी व सामाजिक कुरीतियाँ सर्वत्र व्याप्त थीं। इन सभी चुनौतियों का सामना करते-करते भारत के सामने उद्देश्य यह था कि सभी को शिक्षित कर सकने वाली शैक्षणिक व्यवस्था बनाई जा सके।

उस समय भारत के शिक्षाविदों के सम्मुख यह लक्ष्य था कि वे एक ऐसी व्यवस्था की स्थापना करें कि वह जनसामान्य को शिक्षित बनाने के साथ-साथ सुसंस्कारी भी बना सके। यह एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता थी कि शिक्षा लौकिक विकास के साथ सांस्कृतिक धरोहर को भी अक्षुण्ण रख सके। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, माध्यमिक शिक्षा आयोग, कोठारी आयोग एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति जैसे प्रयासों के माध्यम से एक ऐसी प्रगतिशील शिक्षाव्यवस्था की स्थापना की कोशिश की गई, जिसके माध्यम से एक मजबूत व संस्कारी देश की नींव तैयार हो सके।

दुर्भाग्य मात्र इतना ही रहा कि इन सारे प्रयासों का उद्देश्य मात्र लौकिक विकास तक ही सीमित रह गया एवं उनके माध्यम से विद्यार्थियों एवं भविष्य के नागरिकों में राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण के प्रयास पर कोई बल नहीं दिया गया। शिक्षा आयोग का संपूर्ण जोर विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा के विकास पर ही था तो वहीं माध्यमिक शिक्षा आयोग लोकतांत्रिक परिवेश में शिक्षा की भूमिका के महत्त्व पर ज्यादा बल देता दिखा।

यह सत्य है कि इन प्रयासों के माध्यम से कुछ अच्छी सोच भी उभरकर आई, जैसे कोठारी आयोग ने बच्चों के विकास में समाज-उपयोगी उत्पादक कार्यों को शामिल करने की अनुशंसा की तो वहीं राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने 'सभी के लिए शिक्षा' तथा 'ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड' जैसे सार्थक प्रयास किए।

भारत एक विशाल राष्ट्र है एवं इसका सामाजिक परिवेश भी बहुत-सी विविधताओं एवं अनेक भाषाओं को अपने में समेटे हुए है और इसलिए बहुत-सी योजनाओं के प्रभावों को व्यापक रूप से महसूस करने में वर्षों लग जाते हैं। इन सबके बावजूद बहुत से परिवर्तन ऐसे हैं, जिन्हें श्रेष्ठ व अनुपम कहा जा सकता है। भारत की साक्षरता का स्तर पहले की तुलना में कई गुना बेहतर है, रोजगार की संभावनाएँ बढ़ रही हैं और धीरे-धीरे ही सही, पर भारत के अनेक शैक्षणिक संस्थान विश्व के पटल पर अपनी पहचान बनाते दिख रहे हैं।

इन सारे परिवर्तनों के मध्य, यह हमारे लिए जरूरी होगा कि हम परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदत्त शिक्षाव्यवस्था को भारतीय शिक्षा नीति के केंद्र में लेकर आएँ। विद्यार्थियों को साक्षरता के अतिरिक्त सार्थकता का पाठ पढ़ाएँ, उन्हें शिक्षा के अलावा विद्या का गान सुनाएँ, उन्हें अच्छे डॉक्टर, इंजीनियर बनाने के साथ-साथ अच्छा इनसान भी बनाएँ।

आजाद भारत में शैक्षिक दृष्टि से हमारी उपलब्धियाँ प्रशंसा के योग्य कही जा सकती हैं। भारत के चिकित्सक, इंजीनियर, वैज्ञानिक अपनी योग्यता विश्व के प्रतिष्ठित

संस्थानों में सिद्ध करवा चुके हैं। तब भी भारत की शैक्षिक दृष्टि कभी मात्र रोजगारपरक नहीं रही, बल्कि व्यक्तित्व निर्माण की रही है। अनुशासन, सत्यवादिता, श्रमशीलता, विनम्रता हमारे यहाँ पाठ्यक्रम का अंग भले ही न रहे हों, परंतु विद्यार्जन का अभिन्न अंग रहे हैं। आज उसी चिंतन को पुनः भारतीय शिक्षा का आधार बनाने की जरूरत है, ताकि देश को श्रेष्ठ एवं समुन्नत नागरिक सदा मिल सकें। ❑

घटना अत्यंत प्राचीनकाल की है। मध्य देश में साम्राज्य गुप्त का राज्य था। उनके पुत्र पुष्यमित्र अत्यंत आकर्षक व्यक्तित्व के धनी थे और उन्हें अपनी इस सुंदरता का अत्यधिक अभिमान था। एक बार वे मंत्रीपुत्र सुयश के साथ नगर भ्रमण को निकले। उन्होंने देखा कि एक स्थान पर शवदाह हो रहा था। राजकुमार पुष्यमित्र ने पूछा—"यहाँ क्या हो रहा है?" सुयश ने कहा—"यहाँ किसी मृत व्यक्ति का दाह संस्कार हो रहा है।"

राजकुमार ने कहा—"अवश्य ही यह व्यक्ति कुरूप होगा।" सुयश ने उत्तर दिया—"नहीं, मरने पर प्रत्येक व्यक्ति का शरीर सड़ने-गलने लगता है, इसलिए उसे जला ही देना पड़ता है।" राजकुमार पुष्यमित्र को इस बात का तनिक-सा भी एहसास नहीं था कि हर व्यक्ति को एक दिन मृत्यु को प्राप्त होना पड़ता है। इस सत्य का आभास होने पर उसे यह अनुभव होने लगा कि उसका वह सुंदर शरीर भी एक दिन नष्ट हो जाएगा। उसका मन खिन्न हो उठा। उसने अपने मन की व्यथा राजगुरु से व्यक्त की।

राजगुरु राजकुमार पुष्यमित्र को अपने गुरु के पास ले गए। वे राजकुमार की खिन्नता को समझकर बोले—"तुम इस शरीर के अंतिम परिणाम की चिंता से व्यथित हो।" राजकुमार ने हाँ में उत्तर दिया। राजगुरु के गुरु बोले—"आज तुम जिस भवन के स्वामी हो, यदि कल उसके जीर्ण होने पर तुम्हें अन्यत्र निवास करना पड़े और वह भवन नष्ट हो जाए तो इससे तुम्हारे जीवन-यात्रा पर क्या प्रभाव पड़ेगा?" राजकुमार पुष्यमित्र ने उत्तर दिया—"कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। जो चीज जीर्ण हो जाए, उसे त्याग देना ही उत्तम है।" वे बोले—"बस, यही नियम शरीर पर भी लागू होता है। इसमें निवास करने वाली आत्मा इस शरीर के जीर्ण होने पर इसका त्याग कर देती है और यह शरीर नष्ट कर दिया जाता है। आत्मा के लिए यह शरीर एक उपकरण मात्र है,उसके लिए चिंतित मत होओ। अमर तो मात्र हमारे द्वारा किए गए शुभ अथवा अशुभ कर्मों के परिणाम होते हैं।" इन वचनों ने पुष्यमित्र की आँखें खोल दीं। वह उस आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए निरत हो गया, जो शाश्वत व अमर है।

इंद्रियसंयम—सुख-शांति का ठोस आधार

आत्मसंयम स्वर्ग का द्वार है। व्यक्ति हो या परिवार अथवा समाज, संयम ही सुख एवं शांति का आधार है। जीवन में सुख-चैन के अभाव का मुख्य कारण असंयम ही है। समाज में फैली हिंसा, अपराध, बलात्कार, रोग, शोक एवं दु:ख का मूल कारण आत्मसंयम की कमी ही है। वस्तुत: आत्मसंयम पुण्यार्जन की मात्रा की पहली सीढ़ी है और इस यात्रा में इंद्रियसंयम सर्वप्रथम आता है, जिसकी प्राय: धज्जियाँ उड़ती रहती हैं। इसका प्रमुख कारण रहता है प्रलोभन का मोहक एवं मायावी आकर्षण, जो पहले व्यक्ति को लुभाता है, आकर्षित करता है, फिर अपनाने पर नागपाश बनकर जकड़ लेता है और पूरा सारतत्त्व निचोड़कर ही दम लेता है।

प्रलोभन का मोहक आकर्षण नाना रूपों में साधक को ठगने एवं पथभ्रष्ट करने के लिए आता है। जीवन में आने वाले प्रलोभनों की मायावी सृष्टि इतनी मनमोहक एवं लुभावनी होती है कि क्षण भर के लिए व्यक्ति की विवेक-बुद्धि पंगु हो जाती है और इनके पुष्पित एवं मादक प्रहार से चित्त विक्षिप्त हो उठता है और व्यक्ति अदूरदर्शी निर्णय ले बैठता है। सारी नैतिकता, व्रत-संकल्प, नेक इरादे, पावन भाव आदि क्षणभंगुर सुख के सामने घुटने टेक देते हैं। अंतत: इससे उत्पन्न होने वाली हानि, कष्ट, पाप, संताप, अपमान एवं अप्रतिष्ठा से व्यक्ति दग्ध हो उठता है। यदि कभी व्यक्ति इनके दुष्परिणामों को देखते हुए कुछ समय के लिए सँभल भी जाए तब भी प्रलोभन अपना दूसरा रूप धरकर पुन: व्यक्ति को अपने नागपाश में कस लेता है और उसे साधना-पथ से स्खलित कर देता है।

सुख की खोज में भटक रहे इंद्रियलोलुप लोग एवं नैतिक दृष्टि से कमजोर चरित्र वाले व्यक्ति जहाँ आसानी से प्रलोभन के शिकार हो जाते हैं तो वहीं साधकों को भी प्रारंभिक अवस्था में दीर्घकाल तक प्रलोभनों की चुनौती का सामना करना पड़ता है। यहाँ तक कि सात्त्विक बुद्धि वाले तक दूषित वातावरण के प्रभाव में प्रलोभनों के शिकंजे में कसते देखे जाते हैं।

अविद्या, क्षणिक भावावेश एवं अदूरदर्शिता के कारण प्रलोभन में रमणीयता का मिथ्या बोध होता है। हालाँकि चित्त में जड़ जमाए कुसंस्कार ही इसमें मुख्य कारण होते हैं, जिनके कारण व्यक्ति बाहर के प्रलोभनों के लोभ को संवरण नहीं कर पाता। मनोवैज्ञानिक रूप में इसके पीछे दो तत्त्व सक्रिय होते हैं, जो हैं—उत्सुकता और दूरी। दूरी के कारण अनावश्यक आकर्षण पैदा होता है और विषयासक्त उत्सुकतावश इसमें हाथ डाल बैठता है। ईसाई धर्म में आदिपुरुष आदम या एडम के स्वर्ग से पतित होने का मुख्य कारण यही उत्सुकता का भाव था, जब वे पाप फल को खाने के लिए उत्सुकतावश प्रवृत्त हुए और स्वर्ग से नीचे आ गिरे। यही उत्सुकता एवं दूरी संसार में रहते हुए पाप-प्रलोभनों के आकर्षण में व्यक्ति के लिप्त होने का कारण भी बनते हैं।

वास्तव में रमणीयता किसी बाह्य जगत की वस्तु में नहीं होती, बल्कि हमारी अपनी कल्पना और उत्सुकता की भावनाओं की प्रतिच्छाया मात्र होती है। मन की कोई गुप्त-अतृप्त इच्छा प्रलोभन का रूप धारण कर लेती है और विवेक का नियंत्रण ढीला पड़ते ही मन बहकने लगता है। तम-रज गुण, इंद्रियलोलुपता, बीमारी, प्रमाद जैसे आवरण के कारण बुद्धि एवं समझ पंगु हो जाते हैं और व्यक्ति को पतन की ओर ले जाते हैं। अत: मन पर सतर्कता के साथ कड़ी निगरानी रखने की आवश्यकता रहती है कि कहीं यह प्रलोभनों के सामने बहक व भटक न जाए।

जैसे युद्ध में प्रतिपक्षी की चाल पर पैनी निगाह रखी जाती है, वैसे ही मनरूपी चंचल शत्रु पर तीव्र दृष्टि रखनी पड़ती है और विवेक को सदा जाग्रत रखना होता है। जहाँ मन इंद्रियजनित प्रलोभन की ओर खिंचने लगे तो उसे तत्काल विपरीत कार्य में लगाकर इसकी उच्छृंखलता को रोक देना जरूरी होता है। निस्संदेह हमारा अनगढ़ मन हमारा बड़ा बलवान शत्रु है। वासना और कुविचार की माया इस पर बड़ी शीघ्रता से हावी होती है एवं बड़े-बड़े संयमी ऐसे में स्वयं पर काबू खो बैठते हैं और पथभ्रष्ट होते रहते हैं।

साधना का इतिहास ऐसे अनगिनत लोमहर्षक उदाहरणों का साक्षी है। वस्तुत: मन को शुद्ध करना अत्यंत दुष्कर कृत्य है, लेकिन साथ ही इस साधना समर का एक सत्य यह भी है कि यदि व्यक्ति दृढ़ता के साथ अपनी आत्मिक उन्नति के ध्येय को लेकर कृतसंकल्प हो जाए, अपने आदर्श पर डटा रहे और इच्छाशक्ति को लक्ष्यकेंद्रित रखे, तो मन की शक्ति बढ़ती जाती है और वासना का अविजित क्षेत्र अपने अधिकार में आने लगता है।

यदि तनिक भी इसकी चंचलता में बहक गए, तो इस विचलन में मनुष्य का चरित्र, आदर्श, संयम, नैतिक दृढ़ता, धर्म सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। जबकि इसके विपरीत मन को दृढ़ निश्चय कर स्थिर रखने और उसी पर ध्यान एकाग्र रखने से मुमुक्षु की इच्छाशक्ति प्रबल बनती है। वास्तव में इंद्रियों का सुख—दु:खस्वरूप है। यह अस्थिर और क्षणिक होता है। इसका आभासित हो रहा आनंद एक आवरण मात्र होता है, जिसकी पूर्ति के लिए व्यक्ति को न जाने कितने कुचक्र, कुटिल रीतियों का अवलंबन लेना पड़ता है।

एक इंद्रिय को तृप्त करते-करते व्यक्ति दूसरी, तीसरी व न जाने कितनी कुचेष्टाओं में लिप्त होता जाता है। भोगी पाप-पंक में गहरा धँसता जाता है और जीवन सांसारिक ताप-संताप की अग्नि में झुलसता रहता है और इंद्रियसुखों का कृतदास बनकर जीवन की शांति को खो बैठता है। ऐसे में सांसारिक उत्कर्ष के साथ व्यक्ति आध्यात्मिक संभावनाओं से भी वंचित हो जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता (6 /36) में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि—

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मति:।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायत:॥

अर्थात मन को संयमित न करने वाले पुरुष के लिए योग दुष्प्राप्य है। स्वाधीन मन वाले प्रयत्नशील पुरुष द्वारा ही योग प्राप्त होता है। उसी को इष्टसिद्धि होती है।

इसके लिए गीता—6/26 में वे इस चंचल मन को परमात्मा में निरुद्ध करने का आदेश देते हैं—

यतो यतो निश्चरति मनश्चचंचलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

अर्थात यह अस्थिर और चंचल मन, जिस-जिस कारण से संसार में जाए, उसे उससे हटाकर बार-बार आत्मा में लगाया जाए। संसार के विषयों से विपरीत परमात्मा का जो स्वरूप विशेष आकर्षक लगे—मन, बुद्धि को उसमें एकाग्र करने का सतत अभ्यास करते रहें। वैराग्य और श्रेष्ठ चिंतन के अभ्यास से ही प्रलोभन से मुक्ति मिल सकती है। यह सत्य हृदयंगम होने पर साधक फिर सच्चिंतन को नहीं छोड़ता और सतत अभ्यास का अवलंबन लेते हुए इंद्रियों व मन को साधता है और आत्मसिद्धि के मार्ग पर आगे बढ़ता है। ❑

एक पिता ने अपने पुत्र को मिठाई के दो टुकड़े दिए और उससे कहा—छोटा टुकड़ा दोस्त को देना और बड़ा टुकड़ा खुद खाना। पिता का कहा सुनकर बालक ने 'हाँ' तो कहा, परंतु उसने बड़ा टुकड़ा साथी को दिया और स्वयं छोटा टुकड़ा खाने लगा। पिता दूर खड़े यह दृश्य देख रहे थे। उन्होंने बाद में पुत्र से पूछा—"पुत्र! तूने बड़ा टुकड़ा उसे देकर छोटा स्वयं क्यों खाया, मैंने तो तुझे साथी को छोटा टुकड़ा देने और स्वयं बड़ा टुकड़ा खाने हेतु कहा था।"

वह बालक बोला—"पिताजी! दूसरों को अधिक देने और स्वयं कम खाने में मुझे अधिक आनंद आता है।" उसके इस कथन पर पिता अपने पुत्र को निहारते हुए सोचने लगे कि सचमुच यही भावना मानवता के लिए आदर्श है और इसी पर विश्व शांति की सारी संभावनाएँ निर्भर हैं। मनुष्य अपने लिए कम चाहे और दूसरों को अधिक देने का प्रयत्न करे तो समस्त झगड़ों का अंत संभव है।

सद्गुणों का समुच्चय ही ईश्वर है

हुगली नदी के किनारे एक संत रहते थे। उनका नाम था स्वामी रसराज। कहते हैं कि उन्हें भगवान की लीलाओं में विशेष रस आता था, इसलिए लोग उन्हें स्वामी रसराज कहा करते थे। उन्हें बचपन से ही भगवान के प्रति विशेष अनुराग था। विरक्त व वैरागी प्रकृति के होने के कारण युवावस्था में ही गृह-त्यागकर वे हुगली नदी के किनारे एक कुटिया में रहते हुए भगवान का ध्यान, भजन, नामस्मरण, शास्त्रों का स्वाध्याय आदि किया करते थे।

एक बार एक संत मंडली के साथ वे वृंदावन की यात्रा पर निकले। चूँकि वर्षों की तप-साधना के कारण उनका चित्त पवित्र और शुद्ध हो चुका था, इसलिए वृंदावन धाम पहुँचते ही आनंदातिरेक में उनके रोम-रोम पुलकित हो उठे। उन्हें ऐसा महसूस होने लगा कि वृंदावन के कण-कण में भगवान श्रीकृष्ण का वास है। उन्हें लगने लगा कि संपूर्ण वृंदावन धाम उनका भौतिक शरीर है। उन्हें भगवान श्रीकृष्ण की रासलीला का स्मरण हो आया।

उन्होंने श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कंद के पाँचवें अध्याय में रसेश्वर भगवान श्रीकृष्ण की रासलीला का मनोहारी दर्शन किया था। उन्हें भगवान की लीलामाधुरी की सरस अनुभूति होने लगी। वे वृंदावन की गलियों से गुजरते हुए अपने मन की आँखों से यह भी देखते जाते कि कभी वृंदावन की इन्हीं गलियों से मेरे श्यामसुंदर भी गुजरे होंगे।

वे वृंदावन में जहाँ-जहाँ भी जाते भगवान की लीलाओं से जुड़े स्थान को साष्टांग नमन करते और आनंदित होते। वृंदावन में रहते हुए एक दिन वे संत-मंडली द्वारा आयोजित रासलीला देखने पहुँचे। रासलीला प्रारंभ हुई। अचानक रासलीला में पूर्णिमा की रात का वह दृश्य आया, जिसमें भगवान कृष्ण का गोपियों संग रास प्रारंभ हुआ था। स्वयं भगवान शिव भी वेश बदलकर भगवान श्रीकृष्ण की उस मधुर रासलीला का आनंद लेते दिख रहे थे।

स्वामी रसराज के लिए तो यह रासलीला कोई नाटक नहीं, बल्कि वह रासलीला थी, जिसमें भगवान श्यामसुंदर रासलीला कर रहे थे। यह दृश्य देखकर उनके अंदर प्रभुप्रेम की प्रबल भावनाएँ उमड़ने-घुमड़ने लगीं। उनके हृदयाकाश में भगवान के प्रति उनका प्रेम मेघ बनकर बरसने को व्याकुल होने लगा। भावातिरेक में, प्रेमातिरेक में उनके रोम-रोम पुलकित हो उठे। भगवान के प्रति उनका प्रेम उनके नेत्रों से आँसू बनकर बरसने लगा। उनका शरीर उनके वश में नहीं रहा। आत्मारूपी गोपियों का परमात्मारूपी श्यामसुंदर के साथ मधुर नृत्य देखकर उनका मन विभोर हो उठा।

श्यामसुंदर के साथ मधुर रास करने को उनका मन व्याकुल हो उठा। भगवान के दिव्य दर्शन को उनकी आत्मा व्याकुल हो उठी। उनके हृदय की बस एक ही पुकार थी— "हे प्रभु! हे मेरे श्यामसुंदर! मुझ पर करुणा कीजिए, मुझ पर दया कीजिए। हे प्रभु! मुझे भी अपनी रासलीला में स्थान दीजिए। हे प्रभु! अब मेरे प्राण आपकी मधुर छवि के दर्शन को व्याकुल हैं। अब मुझे दर्शन दीजिए भगवान!" प्रभु प्रेम की इसी पराकाष्ठा में वे ध्यान-समाधि में डूब गए। सामान्य स्थिति में आने पर वे रात्रि में अपने निवासस्थान पर आए। निवास पर आकर वे रात्रिशयन हेतु बिस्तर पर लेट गए। भगवान की दिव्य लीलाओं व मधुर छवि का ध्यान-स्मरण करते हुए वे मन-ही-मन 'मधुराष्टकम्' का गायन करने लगे। गायन करते हुए उनके नेत्रों से आँसू बहते जाते थे और वे गाते जाते थे—

अधरं मधुरं वदनं मधुरं,
नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ 1॥
वचनं मधुरं चरितं मधुरं,
वसनं मधुरं वलितं मधुरं।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ 2॥

वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः,
पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ 3॥
गीतं मधुरं पीतं मधुरं,
भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम्।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ 4॥
करणं मधुरं तरणं मधुरं,
हरणं मधुरं रमणं मधुरम्।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ 5॥
गुंजा मधुरा माला मधुरा,
यमुना मधुरा वीची मधुरा।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ 6॥
गोपी मधुरा लीला मधुरा,
युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरम्।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ 7॥
गोपा मधुरा गावो मधुरा,
यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरम्॥ 8॥

अर्थात हे कृष्ण! आपके होठ मधुर हैं, आपका मुख मधुर है, आपकी आँखें मधुर हैं, आपकी मुस्कान मधुर है, आपका हृदय मधुर है, आपकी चाल मधुर है, मधुरता के ईश हे श्रीकृष्ण! आपका सब कुछ मधुर है ॥ 1॥

आपका बोलना मधुर है, आपका चरित्र मधुर है, आपके वस्त्र मधुर हैं, आपका चलना मधुर है, आपका घूमना मधुर है, मधुरता के ईश हे श्रीकृष्ण! आपका सब कुछ मधुर है॥ 2॥

आपकी बाँसुरी मधुर है, आपकी चरण रज भी मधुर है, आपके हाथ मधुर हैं, आपके चरण मधुर हैं, आपका नृत्य मधुर है, आपकी मित्रता मधुर है, मधुरता के ईश हे श्रीकृष्ण! आपका सब कुछ मधुर है॥ 3॥

आपके गीत मधुर हैं, आपका पीना मधुर है, आपका खाना मधुर है, आपका सोना मधुर है, आपका रूप मधुर है, आपका टीका मधुर है, मधुरता के ईश हे श्रीकृष्ण! आपका सब कुछ मधुर है॥ 4॥

आपके कार्य मधुर हैं, आपका तैरना मधुर है, आपका प्यार करना मधुर है, आपके शब्द मधुर हैं, आपका शांत रहना मधुर है, मधुरता के ईश हे श्रीकृष्ण! आपका सब कुछ मधुर है॥ 5॥

आपकी घुँघची मधुर है, आपकी माला मधुर है, आपकी यमुना मधुर है, उसकी लहरें मधुर हैं, उसका पानी मधुर है, उसके कमल मधुर हैं, मधुरता के ईश हे श्रीकृष्ण! आपका सब कुछ मधुर है॥ 6॥

आपकी गोपियाँ मधुर हैं, आपकी लीला मधुर है, आप उनके साथ मधुर हैं, आप उनके बिना मधुर हैं, आपका देखना मधुर है, आपकी शिष्टता मधुर है, मधुरता के ईश हे श्रीकृष्ण! आपका सब कुछ मधुर है॥ 7॥

आपके गोप मधुर हैं, आपकी गायें मधुर हैं, आपकी छड़ी मधुर है, आपकी सृष्टि मधुर है, आपका विनाश करना मधुर है, आपका वर देना मधुर है, मधुरता के ईश हे श्रीकृष्ण! आपका सब कुछ मधुर है॥ 8॥

तो इस प्रकार मधुराष्टकम् के माध्यम से स्वामी रसराज ने भगवान की दिव्यता, मधुरता का स्मरण किया। भगवान की स्तुति में वस्तुतः भगवान की दिव्यता, मधुरता, श्रेष्ठता का ही स्मरण-गायन किया जाता है, जिससे साधक के जीवन में भी ईश्वरीय दिव्यता, मधुरता अभिव्यक्त होने लगे। परमपूज्य गुरुदेव पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अनुसार भगवान सद्गुणों व श्रेष्ठताओं का समुच्चय है। अस्तु भगवान की श्रेष्ठता, दिव्यता, मधुरता, पवित्रता को अपने जीवन-चरित्र में उतारना और वैसे जीना ही वास्तविक ईश्वरभक्ति है। उन ईश्वरीय दिव्यताओं, श्रेष्ठताओं, आदर्शों को अपने जीवन में उतार लेने से साधक को पल-पल आत्मिक आनंद, ईश्वरीय आनंद की अनुभूति होने लगती है। भगवान का हर कृत्य दिव्यता, मधुरता, पवित्रता, श्रेष्ठता से परिपूर्ण होता है। अस्तु भक्त का हर कृत्य भी वैसा ही होना चाहिए।

मधुराष्टकम् का गायन करते-करते स्वामी रसराज का चित्त पवित्र हो गया। उनके कर्म-संस्कार मिट गए। भगवान की जिस दिव्यता, मधुरता का उन्होंने गायन किया अपने अंतस् में वे उसकी अनुभूति भी करने लगे। उसी आनंददायी अनुभूति में वे गहरी निद्रा में चले गए। उनकी निद्रा भी योगनिद्रा बन गई। उनकी निद्रा भी ध्यान-समाधि

बन गई। उन्होंने उसी गहन समाधि में देखा कि शरद पूर्णिमा की रात है।

उन्होंने देखा कि पूर्णिमा अपनी रुपहली चाँदनी से संपूर्ण सृष्टि को नहला रही है। वृंदावन का कण-कण उस चाँदनी में नहा रहा है। यमुना की बहती हुई लहरों पर चाँदनी छिटक रही है। उधर विरह-व्यथा से व्याकुल गोपियों को आनंद रस से सराबोर करने के लिए भगवान श्यामसुंदर निष्पाप बालक बन प्रकट हो गए हैं।

उन्होंने अनुभव किया कि बालकरूपी भगवान उत्सुक होकर अपनी छाया को पकड़ने के लिए दौड़ रहे हैं। बालकरूपी भगवान श्यामसुंदर गोपियों से मिलने के लिए वृंदावन में यमुना तट पर वंशी बजा रहे हैं। वंशी की मधुर स्वरलहरियों से आकर्षित होकर गोपियाँ श्यामसुंदर से मिलने दौड़ी चली आ रही हैं। महारास का यह दुर्लभ दृश्य देखने के लिए आकाशमंडल पर सभी देवता, यक्ष, गंधर्व एकत्र हो रहे हैं। गौरांग गोपियाँ आकाशमंडल में उमड़ते-घुमड़ते बादलों में बिजली की भाँति चमक रही हैं।

उन गौरांग गोपियों के बीच भगवान कृष्ण नीलमणि के समान चमकते हुए अपनी छवि बिखेर रहे हैं। सभी गोपिकाएँ आकाशमंडल में प्रकाश शरीर में बाल रूप भगवान श्यामसुंदर के साथ रास-नृत्य कर रही हैं। जितनी गोपिकाएँ हैं, उतने ही कृष्ण हैं। हर गोपी के साथ कृष्ण भी हैं।

आकाशमंडल से वे सभी नीचे यमुना तट पर उतर रहे हैं। उस दिव्य स्थान पर रास, महारास, नृत्य हो रहे हैं। भगवान भोलेनाथ भी गोपी का वेश धारण कर उस महारास में नृत्य करते हुए आनंदविभोर हो रहे हैं। चंद्रमंडल से लगातार अमृत की वर्षा हो रही है। महारास के बीच अदृश्य रूप में कई प्रकार के वाद्ययंत्र बज रहे हैं, उनकी मधुर स्वरलहरियों को सुन गोपिकाएँ तृप्त हो रही हैं।

स्वामी रसराज ने अनुभव किया कि वे भी अपने सूक्ष्मशरीर में गोपिकाओं संग नाच रहे हैं। उनकी आत्मा श्यामसुंदर के मनोहर रूप को देख-देखकर आनंदित हो रही है। अचानक वह मनोहारी दृश्य अदृश्य हो गया व उनकी आँखें खुल गईं। इस अद्‌भुत रास का साक्षी बन रसराज जी गद्‌गद हो उठे व उनका रोम-रोम पुलकित हो उठा।

धन्य है ऐसी ईश्वरभक्ति, भगवद्‌भक्ति। ऐसी भक्ति हो तो साधक के, भक्त के जीवन का पल-पल आनंद से भर जाता है। उसका जीवन सफल हो जाता है। कितना अच्छा हो यदि हम भी प्रभु की ऐसी ही भक्ति करते हुए जीवन-निर्वाह करें और अपने जीवन को खुशियों व आनंद से भर लें और अपने सौभाग्य को सराहें। अपने जीवन को धन्य बना लें। ❑

एक रियासत के दीवान जी अत्यंत कर्त्तव्यपरायण, उदार एवं सेवाभावी व्यक्तित्व के धनी थे। एक बार एक युवक उनसे मिलने आया और उसने प्रणाम करके उनके चरणों में दस हजार रुपये का चेक रख दिया। दीवान साहब ने पूछा—"यह क्या?" वह युवक बोला—"मैं आपको स्मरण दिलाता हूँ। उन दिनों मेरी आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी। आपकी दी हुई सहायता से ही मैंने बी0ए0, एल-एल0बी0 पास किया और अब न्यायाधीश बनकर इस शहर में आ गया हूँ। मैंने हिसाब लगाकर देखा कि कुल दस हजार की सहायता आपकी ओर से मुझे मिली, अब मैं उसे लौटाकर ऋणमुक्त होने आया हूँ।" दीवान साहब बोले—"ऐसे भी कहीं ऋणमुक्त हुआ जाता है? आप इस चेक को ले जाइए और इसमें अपनी ओर से कुछ रुपये मिलाकर गरीब विद्यार्थियों की सहायता कीजिए, उन्हें भी न्यायाधीश बनाइए, तभी आप ऋणमुक्त हो सकेंगे।" श्रद्धावनत् होकर न्यायाधीश ने विदा ली और दीवान साहब का आदेश माना। वस्तुतः उपकारी से उऋण होने का एकमेव मार्ग यही है कि उस परंपरा को आगे बढ़ा दिया जाए।

पर्व विशेष

वैश्विक परिवर्तनों की धुरी शांतिकुंज

अध्यात्म विज्ञान के इतिहास में उच्चस्तरीय उपलब्धियों के लिए तप-साधना को ही एकमात्र विधान-उपचार माना गया है। उसको पूर्ण करने के लिए तपस्वी महापुरुष एकाग्रता एवं एकात्मता को अपना सहयोगी बनाते हैं। बाह्य क्रियाकलापों को मुखर बनाए रखने पर तपशक्तियाँ निरर्थक उद्देश्यों के संपादन में लगकर एवं बिखरकर नष्ट हो जाती हैं।

जैसे भगवान सूर्य की किरणों को आतिशी शीशे पर केंद्रित कर देने के उपरांत उससे प्रचंड अग्नि का उत्पादन संभव है, वैसे ही तपस्वी की तपशक्तियों को केंद्रीभूत कर देने पर उनके माध्यम से भी महान प्रयोजनों की पूर्ति संभव है।

ऐसे ही एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य को ध्यान में रखकर परमपूज्य गुरुदेव ने सन् 1984 में अपनी सूक्ष्मीकरण की साधना शांतिकुंज के प्रांगण में आरंभ की थी। उससे पूर्व के परमपूज्य गुरुदेव के दिन अत्यधिक सघन गतिविधियों वाले अनेक कार्यक्रमों में भाग-दौड़ वाले रहे थे।

परमपूज्य गुरुदेव एक के बाद एक करके अनेक शक्तिपीठों, प्रज्ञापीठों, प्रज्ञा संस्थानों की स्थापना, भूमिपूजन, प्राणप्रतिष्ठा जैसे कार्यक्रमों की शृंखलाओं को संपन्न करके लौटे थे। स्वाभाविक था कि निकटवर्ती कार्यकर्त्ताओं में यह जिज्ञासा उभरती कि परमपूज्य गुरुदेव अब सार्वजनिक जीवन का परित्याग क्यों कर रहे हैं?

परमपूज्य गुरुदेव के सूक्ष्मीकरण साधना में जाने से पूर्व में उनके द्वारा आयोजित गोष्ठी में कुछ कार्यकर्त्ताओं ने मन मजबूत करके यह प्रश्न पूज्य गुरुदेव से पूछ ही लिया। पूज्य गुरुदेव उत्तर में बोले—"बेटा! ईश्वरीय योजना के जितने भी कार्य होते हैं, वो हमारे इस शरीर के माध्यम से ही संपन्न होते हैं। अब तक जो भी कार्य हमारे द्वारा कराए गए हैं, उनकी परिधि स्थानीय ही रही है। इनकी व्यवस्था बनाने का कार्य तो कोई भी कर सकता है, पर अब समय हमारी प्रोन्नति का है, हमारा प्रमोशन होने वाला है।

गुरुदेव का प्रमोशन किस रूप में होगा, गुरुदेव ये क्या कह रहे हैं—ऐसी जिज्ञासा सबके मन में उमड़ी तो उसका समाधान करते हुए परमपूज्य गुरुदेव बोले—"बेटा! जो अगला कार्य हमको दिया गया है, उसका स्वरूप बहुत बड़ा है। पूरी पृथ्वी उसके दायरे में आती है। इन दिनों पृथ्वी का वायुमंडल और वातावरण—दोनों ही भयंकर रूप से विकृत, प्रदूषित और विषाक्त हो गए हैं—परिणाम में इनसान को भयंकर रोगों और प्राकृतिक विपदाओं का सामना करना पड़ सकता है। फिर इनसान ने ऐसे आयुधों का जखीरा जमा करके रख दिया है कि यदि वो अनाड़ियों के हाथ में लग जाए तो पूरी मानवता को भस्म होते मिनट नहीं लगने वाला है।"

परमपूज्य गुरुदेव आगे बोले—"यह जो वातावरण है इसकी विकृति ही इनसान की सोच को, आचरण को कुमार्ग पर ले जाती है। इस स्थिति में जो भी रहेगा, वह नर-पशु और नर-पिशाच जैसे ही कुकृत्य करेगा। हमारा शरीर तो थोड़े दिन में हम छोड़ देंगे, पर भगवान की इस सर्वोत्तम कृति धरती को इस तरह नरक बनते देख हमें बहुत पीड़ा होती है। क्या इसका भविष्य महाविनाश में बदलने वाला है? इस समस्या का समाधान सहज संभव नहीं है। इसके समाधान के लिए हमें अपनी वर्तमान स्थिति के ऊपर उठकर कुछ बड़ा कार्य शीघ्र संपन्न करना होगा, उसे ही तुम हमारे प्रमोशन के रूप में देख सकते हो।"

सारे कार्यकर्त्ता परमपूज्य गुरुदेव की बातों को एकटक होकर सुन रहे थे। परमपूज्य गुरुदेव आगे कह रहे थे—"बेटा! इसके लिए हमें एक से पाँच बनकर पाँच मोर्चों पर लड़ना होगा। जैसे कुंती ने अपनी एकाकी सत्ता को निचोड़कर पाँच देवपुत्रों को जन्म दिया था, वैसे ही हमें भी इस शरीर को सूक्ष्मीकरण की साधना के माध्यम से पाँच में बदलना होगा।"

यह सुनकर कुछ को लगा कि क्या परमपूज्य गुरुदेव पाँच अलग-अलग शरीरों में विभक्त हो जाएँगे? उनके मन की जिज्ञासा को भाँपते हुए परमपूज्य गुरुदेव बोले—"नहीं बेटा! वो पाँचों शरीर सूक्ष्म होंगे, क्योंकि व्यापक क्षेत्र की गतिविधियों के नियंत्रण का कार्य सूक्ष्मसत्ता से ही संभव हो

पाता है। इन पाँचों के माध्यम से पाँच भिन्न-भिन्न कार्य हम संपन्न करने जा रहे हैं, जैसे—वायुमंडल की शुद्धि, वातावरण का परिष्कार, नवयुग का निर्माण, महाविनाश की संभावनाओं को निरस्त करना और आगे की जिम्मेदारियों को सँभालने के लिए देवमानवों का उत्पादन-अभिवर्द्धन करना।''

परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों ने कार्यकर्त्ताओं के हृदय में एक नई ही प्राण-ऊर्जा का संचार कर दिया। उन्हें अनुभव हो गया कि वे जिनके समीप बैठे हैं; वो मात्र उनके संगठन के मार्गदर्शक नहीं; उनके गुरु मात्र नहीं; उनके पिता मात्र नहीं, बल्कि संपूर्ण सृष्टि की आपदाओं का निराकरण करने वाले अवतारी पुरुष हैं। शांतिकुंज के प्रांगण में विश्व परिवर्तन की ऊर्जा को जन्म देने वाले वे क्षण अद्‌भुत ही नहीं, अलौकिक भी थे। ❑

समर्थ गुरु रामदास के शिष्य छत्रपति शिवाजी का अपने गुरु की मस्ती और आनंद को देखकर मन हुआ कि राज्य, शासन और अन्यान्य परेशान करने वाले दायित्वों से छुटकारा पा लिया जाए। इसलिए एक दिन जब समर्थ का आगमन हुआ तो शिवाजी ने उनसे कहा—''गुरुदेव! मैं राज्य के इन झंझटों से परेशान हो गया हूँ। नित्यप्रति नई उलझनें। इसलिए मैं संन्यास लेने की सोच रहा हूँ।'' गुरुदेव बोले—''हाँ, ठीक है। संन्यास ले लो, इससे अच्छा और क्या हो सकता है।'' शिवाजी पुलकित हो उठे, बोले—''आप ऐसा कोई व्यक्ति बताइए, जिसे मैं राज्य सौंप सकूँ।'' समर्थ बोले—''मुझे राज्य दे दे और निश्चिंत होकर वन में चला जा।''

शिवाजी ने हाथ में जल लेकर राज्य दान का संकल्प कर लिया और वन को जाने लगे। उन्होंने दैनिक दिनचर्या के कुछ साधन साथ ले जाना चाहे तो समर्थ बोले—''तुम राज्य दान कर चुके, तुम्हारा उन पर कोई अधिकार नहीं है।'' तब शिवाजी खाली हाथ ही जाने लगे तो समर्थ बोले—''दिनचर्या के लिए साधनों की आवश्यकता पड़ेगी, वो कहाँ से लाओगे?'' शिवाजी ने उत्तर दिया—''कहीं नौकरी कर लूँगा, उन्हीं पैसों से व्यवस्था बना लूँगा।'' समर्थ ने हँसते हुए कहा—''अच्छा तो तुम्हें नौकरी ही करनी है तो राज्य तो तुम मुझे दे ही चुके, अब तुम मेरे सेवक बनकर इस राज्य का संचालन करो। यह राज-काज ही तुम्हारी नौकरी है।'' इसके उपरांत कभी शिवाजी को राज्य करने में कोई तनाव अनुभव नहीं हुआ। सत्य यही है कि मनुष्य कार्य करने से नहीं, वरन उसे बोझ समझकर करने से तनावग्रस्त होता है, उसे दायित्व रूप में करने से मन निष्कलुष रहता है और तनावमुक्त।

स्थितप्रज्ञ के लक्षण

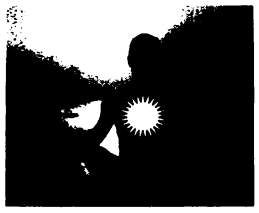

मोक्ष, मुक्ति, आत्मदर्शन, आत्मसाक्षात्कार, ईश्वर साक्षात्कार ही जीवन का परम लक्ष्य माने गए हैं। इनकी प्राप्ति ही मानव जीवन की परम उपलब्धि है। वस्तुत: यह परम आनंद की उपलब्धि है। संसार का कोई भी साधन हमें यह परम आनंद नहीं दे सकता; क्योंकि यह आनंद शरीरगत नहीं, विषयगत नहीं, पदार्थगत नहीं और इसलिए क्षणभंगुर नहीं। आत्मा-परमात्मा से निस्सृत यह आनंद आत्मगत है, परमात्मगत है, शाश्वत है। प्रश्न उठता है कि इसकी प्राप्ति के साधन क्या हैं? इसे प्राप्त कैसे किया जा सकता है?

शास्त्रों में इस परम आनंद की, परमात्मा की प्राप्ति के विभिन्न साधन बताए गए हैं। ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, मंत्रयोग, हठयोग आदि परम आनंद की प्राप्ति के ही विभिन्न साधन हैं, मार्ग हैं, उपाय हैं। अपनी रुचि व प्रकृति के अनुसार इनमें से किसी भी साधन का, उपाय का, मार्ग का अवलंबन, अनुगमन, अनुसरण कर हम उस परम लक्ष्य को, परम आनंद को पा सकते हैं। ऋषियों, मुनियों, योगियों आदि सबने उन्हीं साधनों के सहारे मानव जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त किया था; परम आनंद को प्राप्त किया था।

इन योग साधनों के अभ्यास से जब व्यक्ति का मन निर्मल हो जाता है, तब उसकी आत्मा में ही परमात्मा प्रकट हो जाते हैं। आत्मा में परमात्मा के प्रकट होते ही साधक को सर्वत्र परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं। उसे पल-पल परमात्मा की उपस्थिति की अनुभूति होने लगती है। परमात्मा के प्रकट होते ही साधक की प्रकृति बदल जाती है। उसका स्वभाव बदल जाता है। जब बात स्वभाव की आती है तो जिज्ञासा होती है कि परमात्मा को प्राप्त हुआ व्यक्ति कैसे बोलता है? कैसे व्यवहार करता है? वह कैसा दिखता है? वह कैसे चलता है? ऐसे कुछ प्रश्न अध्यात्मप्रेमियों, जिज्ञासुओं के मन में सहज ही उठते हैं।

अर्जुन के मन में भी कुछ ऐसे ही प्रश्न उठे थे, इसलिए अर्जुन ने गीता के दूसरे अध्याय (54-72वें श्लोक) में भगवान से कुछ ऐसे ही प्रश्न किए और भगवान ने उन प्रश्नों के उत्तर भी दिए। अर्जुन बोले—"हे केशव! समाधि में स्थित परमात्मा को प्राप्त हुए स्थिरबुद्धि पुरुष का क्या लक्षण है? वह कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है?"

तब श्रीभगवान बोले—"हे अर्जुन! जिस काल में यह पुरुष मन में स्थित संपूर्ण कामनाओं को भलीभाँति त्याग देता है और आत्मा-से-आत्मा में ही संतुष्ट रहता है, उस काल में वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है। दु:खों की प्राप्ति होने पर उसके मन में उद्वेग नहीं होता, सुखों की प्राप्ति में भी वह सर्वथा निस्पृह होता है। उसके राग-द्वेष, भय, क्रोध मिट जाते हैं।

"वह शुभ या अशुभ वस्तु को पाकर न हर्षित होता न ही दु:खी होता है। जैसे कछुआ सब ओर से अपने अंगों को समेट लेता है; वैसे ही वह इंद्रियों के विषयों से अपनी इंद्रियों को सब प्रकार से हटा लेता है। परमात्मा का साक्षात्कार कर लेने पर विषयों के प्रति उसकी आसक्ति समाप्त हो जाती है।"

भगवान आगे बोले—"इसलिए हे अर्जुन! साधक को चाहिए कि वह संपूर्ण इंद्रियों को वश में करके मेरे परायण होकर ध्यान में बैठे; क्योंकि जिस पुरुष की इंद्रियाँ वश में होती हैं, उसी की बुद्धि स्थिर हो पाती है। विषयों का चिंतन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है और उन विषयों की प्राप्ति में बाधा पड़ने से वह क्रोधित हो उठता है। फिर क्रोध से उसमें मूढ़ भाव उत्पन्न होता है।

"मूढ़ भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम होने से बुद्धि अर्थात ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि व ज्ञानशक्ति का नाश हो जाने से वह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है, पर जो साधक अपने अंत:करण को अपने अधीन किए हुए है, अपने वश में किए हुए है और राग-द्वेष से रहित हो गया है—वह इंद्रियों द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ भी अंत:करण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है।

''फिर अंत:करण की प्रसन्नता होते ही उसके संपूर्ण दु:खों का नाश हो जाता है। फिर उस प्रसन्नचित्त वाले पुरुष की बुद्धि सब ओर से हटकर शीघ्र ही परमात्मा में भली भाँति स्थिर हो जाती है।''

भगवान ने अर्जुन को इससे आगे कहा—''हे महाबाहो! जिस पुरुष की इंद्रियाँ इंद्रियों के विषयों से सब प्रकार निग्रह की हुई हैं, उसी की बुद्धि स्थिर है और जिसकी बुद्धि स्थिर है, वही परमात्मा के ध्यान में उतर सकता है, डूब सकता है, मिट सकता है। संपूर्ण प्राणियों के लिए जो रात्रि के समान है, वही नित्य ज्ञानस्वरूप व परमानंद, परमात्मा को प्राप्त व्यक्ति के लिए दिवस के समान है। जिन नाशवान व सांसारिक सुखों की प्राप्ति में सभी प्राणी जागते हैं, तो वहीं परमात्मा को तत्त्व से जानने वाले मुनि के लिए, ऋषि के लिए, साधक के लिए वह रात्रि के समान है।

''जैसे नाना नदियों के जल सब ओर से परिपूर्ण व अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में उसको (समुद्र को) विचलित किए बिना ही उसमें (समुद्र में) समा जाते हैं, वैसे ही सभी प्रकार के भोग परमात्मा को प्राप्त स्थितप्रज्ञ पुरुष को बिना विचलित किए ही उसमें समा जाते हैं। वही पुरुष परम शांति को प्राप्त होता है। भोगों को चाहने वाला नहीं। जो पुरुष संपूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित, अहंकाररहित, आसक्तिरहित हो विचरता है, वही शांति को प्राप्त होता है अर्थात वह शांति को प्राप्त है।''

अर्जुन के सभी प्रश्नों का उत्तर देते हुए, उसकी जिज्ञासाओं को शांत करते हुए अंत में भगवान कहते हैं—''हे अर्जुन! यही ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की स्थिति है। इस स्थिति को प्राप्त होकर योगी कभी मोहित नहीं होता, कभी आसक्त नहीं होता, कभी अमुक्त नहीं होता, कभी बंधनग्रस्त नहीं होता। वह तो हर पल उसी ब्राह्मी स्थिति में रहता हुआ अंतकाल में भी उसी ब्रह्मानंद, परमानंद को प्राप्त हो जाता है।''

देवभूमि भारत की महान आध्यात्मिक परंपरा में ऐसे साधकों, योगियों, ऋषियों की एक लंबी शृंखला रही है, जिन्होंने अपनी योग-साधना के बल पर उस ब्राह्मी स्थिति को, परमानंद को, ब्रह्मानंद को प्राप्त किया। अर्जुन के प्रश्न हम सबके प्रश्न हैं; सभी साधकों के प्रश्न हैं और भगवान कृष्ण द्वारा दिए गए उन प्रश्नों के उत्तर हम सबके प्रश्नों के ही उत्तर हैं। अर्जुन की जिज्ञासा हमारी ही जिज्ञासा है। साधकों की ही जिज्ञासा है और भगवान कृष्ण द्वारा उन जिज्ञासाओं का समाधान हमारी जिज्ञासाओं का ही समाधान है। हम भी अनुभव करें कि अब हमारे मन से भी शंकाओं, आशंकाओं के बादल छँट गए हैं। अब हमें भी उस ब्राह्मी स्थिति, परमानंद की प्राप्ति हेतु अपनी साधना तीव्र से तीव्रतम कर देनी है। साधना में संयम व नियमितता बनाए रखना है और यदि ऐसा हो सका तो हमारे लिए भी उस परमानंद की प्राप्ति का लक्ष्य अब दूर नहीं, बहुत दूर नहीं। बस, उस ओर ही हमें अहर्निश बढ़ते जाना है। ❑

**युग निर्माण योजना की मजबूत आधारशिला रखे जाने का अपना मन है। यह निश्चित है कि निकट भविष्य में ही एक अभिनव संसार का सृजन होने जा रहा है। उसकी प्रसव पीड़ा में आगामी वर्ष अत्यधिक अनाचार, उत्पीड़न, दैवी कोप, विनाश और क्लेश, कलह से भरे बीतने हैं। दुष्प्रवृत्तियों का परिपाक क्या होता है, इसका दंड जब भरपूर मिलेगा, तब आदमी बदलेगा। यह कार्य महाकाल करने जा रहा है। हमारे हिस्से में नवयुग की आस्थाओं और प्रक्रियाओं को अपना सकने योग्य जनमानस तैयार करना है। लोगों को यह बताना है कि अगले दिनों संसार का एक राज्य, एक धर्म, एक अध्यात्म, एक समाज, एक संस्कृति, एक कानून, एक आचरण, एक भाषा और एक दृष्टिकोण बनने जा रहा है; इसलिए जाति, भाषा, देश, संप्रदाय आदि की संकीर्णताएँ छोड़ें और विश्वमानव की एकता की, वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना स्वीकार करने के लिए अपनी मनोभूमि बनाएँ। —*परमपूज्य गुरुदेव*

गुरु को अर्पित श्रद्धा-सुमन

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

गुरु को ब्रह्मा के रूप में सृजनकर्त्ता, विष्णु के रूप में पालनकर्त्ता और शिव के रूप में न्यायकर्त्ता माना गया है। गुरु वह, जो कर्त्तव्यपथ की सत्प्रेरणा प्रदान कर शिष्य को परम श्रेष्ठ लक्ष्य की ओर प्रवृत्त करता है। केवल यही एक श्लोक 'गुरु' शब्द की महत्ता को स्पष्ट करते हुए पर्याप्त है। एक सर्वोपरि विशेषता है 'गुरु-शिष्य परंपरा।' अनादिकाल से चली आ रही यह गुरु-शिष्य परंपरा भारतीय संस्कृति की अति उत्तम धरोहर है।

गुरु गु शब्दस्तु अंधकारः
स्यात रु शब्दस्तन्निरोधकः।
अंधकार निरोधत्वात् गुरुः इति
अभिधीयते॥

'गु' यानी अज्ञानरूपी अंधकार और 'रु' यानी अंधकार का नाश करने वाला ज्ञानरूपी तेज। अतः गुरु अर्थात अज्ञानरूपी अंधकार को नष्ट करने वाला।

गुरुकृपा शब्द में 'कृपा' शब्द 'कृप' धातु से बना है। कृपा यानी दया, अनुग्रह अथवा प्रसाद। गुरुकृपा के माध्यम से जीव व शिव के संगम को गुरुकृपा योग कहते हैं। गुरुकृपा योग में साधक योगमार्ग से साधना करने में समय व्यर्थ न कर यानी अन्य समस्त मार्गों को छोड़कर यह सीखता है कि गुरुकृपा किस प्रकार शीघ्र प्राप्त हो सकती है। इस कारण सहज ही इस मार्ग द्वारा शीघ्र उन्नति होती है। गुरुप्राप्ति व गुरुकृपाप्राप्ति के लिए श्रद्धा की आवश्यकता है। तीव्र मुमुक्षुत्व अथवा गुरुप्राप्ति की तीव्र उत्कंठा, इस एक गुण के कारण गुरुप्राप्ति शीघ्र होती है, वह गुरुकृपा सदा बनी रहती है।

गुरु मुझे अपना कहें, मुझ पर उनकी कृपादृष्टि हो, दिन-रात इसी बात का ध्यान कर मैं क्या करूँ, जिससे वे प्रसन्न होंगे—इस दृष्टि से प्रयत्न करना अति आवश्यक है। आद्य तीन युगों की तुलना में कलियुग में गुरुप्राप्ति व गुरुकृपा होना कठिन नहीं है। यहाँ ध्यान रखने योग्य बात यह है कि गुरुकृपा बिना गुरुप्राप्ति नहीं होती है। भविष्य में कौन उनका शिष्य होगा, यह गुरु को पहले से ही ज्ञात होता है।

संत कबीरदास ने कहा है—

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, का के लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिंद दिया मिलाय॥

गुरु की लौकिक व्याख्या तो यही है कि वह शिष्य को सद्गुणी बना दे, उसे नेक राह पर चलने की प्रेरणा दे, किंतु आध्यात्मिक दृष्टि से देखें तो सच्चा गुरु वही है, जो शिष्य को ईश्वर से जोड़ने का सही रास्ता बताए, साथ ही अपने (स्वयं गुरु के) समान खरा भी बना दे। आशय यही है कि गुरु जैसा कोई नहीं हो सकता, वह लोहे को अपने पारस स्पर्श से स्वर्ण बना दे यहाँ तक की व्याख्या सांसारिक रूप से ठीक है, लेकिन अध्यात्म कहता है कि पारस अपने स्पर्श से दूसरों को भी पारस बना दे, तब तो कोई बात है।

जैन धर्म में तो गुरुतत्त्व सर्वोत्तम है, जिनकी साधना एवं चर्चा उत्तम है, जिनके जीवन में हिंसादि, पाप-क्लेश भी नहीं हैं। वे निर्दोष संयमपालन करते हैं, अपने कर्म के प्रति निष्ठावान होते हैं और जिज्ञासा का आदर करते हैं। वे ही हमारे आराध्य गुरु होते हैं—जिनकी कथनी और करनी में तनिक भी अंतर नहीं होता है, वे ही महापुरुष सच्चे गुरु होते हैं। गुरुगीता में लिखा है—

गुकारस्त्वन्धकारश्च रुकारस्तेज उच्यते।
अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः॥

अर्थात 'गु' नाम अंधकार वाचक है और 'रु' नाम प्रकाश का है, इसीलिए जो अज्ञानरूपी अंधकार को मिटा दे, उसका नाम गुरु है।

प्रज्ञा द्वारा निर्गुण का ज्ञान होता है एवं प्रीति द्वारा सगुण का। प्रत्येक जीवदशा के आरंभ में ही मैं ब्रह्म से भिन्न हूँ—ऐसा भ्रम (विपरीत ज्ञान, गलत धारणा) होता है। आगे शास्त्राभ्यास करने पर बुद्धि द्वारा समझ में आता है कि मैं ब्रह्म से भिन्न नहीं हूँ, फिर यह भ्रम उत्पन्न होता है कि यदि मैं ब्रह्म से भिन्न नहीं, तो मुझे वैसी अनुभूति क्यों नहीं होती। यह भ्रम भी गुरुकृपा से ही नष्ट होता है। गुरु के प्रति प्रेम

गुरु को अर्पित श्रद्धा-सुमन

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

गुरु को ब्रह्मा के रूप में सृजनकर्त्ता, विष्णु के रूप में पालनकर्त्ता और शिव के रूप में न्यायकर्त्ता माना गया है। गुरु वह, जो कर्त्तव्यपथ की सत्प्रेरणा प्रदान कर शिष्य को परम श्रेष्ठ लक्ष्य की ओर प्रवृत्त करता है। केवल यही एक श्लोक 'गुरु' शब्द की महत्ता को स्पष्ट करते हुए पर्याप्त है। एक सर्वोपरि विशेषता है 'गुरु-शिष्य परंपरा।' अनादिकाल से चली आ रही यह गुरु-शिष्य परंपरा भारतीय संस्कृति की अति उत्तम धरोहर है।

गुरु गु शब्दस्तु अंधकारः
स्यात रु शब्दस्तन्निरोधकः।
अंधकार निरोधत्वात् गुरुः इति
अभिधीयते॥

'गु' यानी अज्ञानरूपी अंधकार और 'रु' यानी अंधकार का नाश करने वाला ज्ञानरूपी तेज। अतः गुरु अर्थात अज्ञानरूपी अंधकार को नष्ट करने वाला।

गुरुकृपा शब्द में 'कृपा' शब्द 'कृप' धातु से बना है। कृपा यानी दया, अनुग्रह अथवा प्रसाद। गुरुकृपा के माध्यम से जीव व शिव के संगम को गुरुकृपा योग कहते हैं। गुरुकृपा योग में साधक योगमार्ग से साधना करने में समय व्यर्थ न कर यानी अन्य समस्त मार्गों को छोड़कर यह सीखता है कि गुरुकृपा किस प्रकार शीघ्र प्राप्त हो सकती है। इस कारण सहज ही इस मार्ग द्वारा शीघ्र उन्नति होती है। गुरुप्राप्ति व गुरुकृपाप्राप्ति के लिए श्रद्धा की आवश्यकता है। तीव्र मुमुक्षुत्व अथवा गुरुप्राप्ति की तीव्र उत्कंठा, इस एक गुण के कारण गुरुप्राप्ति शीघ्र होती है, वह गुरुकृपा सदा बनी रहती है।

गुरु मुझे अपना कहें, मुझ पर उनकी कृपादृष्टि हो, दिन-रात इसी बात का ध्यान कर मैं क्या करूँ, जिससे वे प्रसन्न होंगे—इस दृष्टि से प्रयत्न करना अति आवश्यक है। आद्य तीन युगों की तुलना में कलियुग में गुरुप्राप्ति व गुरुकृपा होना कठिन नहीं है। यहाँ ध्यान रखने योग्य बात यह है कि गुरुकृपा बिना गुरुप्राप्ति नहीं होती है। भविष्य में कौन उनका शिष्य होगा, यह गुरु को पहले से ही ज्ञात होता है।

संत कबीरदास ने कहा है—

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, का के लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिंद दिया मिलाय॥

गुरु की लौकिक व्याख्या तो यही है कि वह शिष्य को सद्गुणी बना दे, उसे नेक राह पर चलने की प्रेरणा दे, किंतु आध्यात्मिक दृष्टि से देखें तो सच्चा गुरु वही है, जो शिष्य को ईश्वर से जोड़ने का सही रास्ता बताए, साथ ही अपने (स्वयं गुरु के) समान खरा भी बना दे। आशय यही है कि गुरु जैसा कोई नहीं हो सकता, वह लोहे को अपने पारस स्पर्श से स्वर्ण बना दे यहाँ तक की व्याख्या सांसारिक रूप से ठीक है, लेकिन अध्यात्म कहता है कि पारस अपने स्पर्श से दूसरों को भी पारस बना दे, तब तो कोई बात है।

जैन धर्म में तो गुरुतत्त्व सर्वोत्तम है, जिनकी साधना एवं चर्चा उत्तम है, जिनके जीवन में हिंसादि, पाप-क्लेश भी नहीं हैं। वे निर्दोष संयमपालन करते हैं, अपने कर्म के प्रति निष्ठावान होते हैं और जिज्ञासा का आदर करते हैं। वे ही हमारे आराध्य गुरु होते हैं—जिनकी कथनी और करनी में तनिक भी अंतर नहीं होता है, वे ही महापुरुष सच्चे गुरु होते हैं। गुरुगीता में लिखा है—

गुकारस्त्वन्धकारश्च रुकारस्तेज उच्यते।
अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः॥

अर्थात 'गु' नाम अंधकार वाचक है और 'रु' नाम प्रकाश का है, इसीलिए जो अज्ञानरूपी अंधकार को मिटा दे, उसका नाम गुरु है।

प्रज्ञा द्वारा निर्गुण का ज्ञान होता है एवं प्रीति द्वारा सगुण का। प्रत्येक जीवदशा के आरंभ में ही मैं ब्रह्म से भिन्न हूँ—ऐसा भ्रम (विपरीत ज्ञान, गलत धारणा) होता है। आगे शास्त्राभ्यास करने पर बुद्धि द्वारा समझ में आता है कि मैं ब्रह्म से भिन्न नहीं हूँ, फिर यह भ्रम उत्पन्न होता है कि यदि मैं ब्रह्म से भिन्न नहीं, तो मुझे वैसी अनुभूति क्यों नहीं होती। यह भ्रम भी गुरुकृपा से ही नष्ट होता है। गुरु के प्रति प्रेम

का स्पर्श सत्संग एवं सगुण के प्रति भक्ति से होता है अर्थात श्री गुरुकृपा से प्रेम का प्रीति में (निरपेक्ष प्रेम में) रूपांतरण होता है, तो सगुण का आकार ही नष्ट हो जाता है।

सगुण भक्ति आरंभ होने पर, जब साक्षात् सगुण का साक्षात्कार होता है तो उसी क्षण निर्गुण का ज्ञान नष्ट हो जाता है। मैं ब्रह्म हूँ की अनुभूति होती है। इसीलिए सभी संतों ने निर्गुण को वाच्यांश व सगुण को लक्ष्यांश माना है। वाच्यांश अर्थात वाचा से (वाणी से) बोला जाने वाला विषय; जबकि लक्ष्यांश अर्थात जिसकी प्राप्ति हेतु प्रयत्न करना है, उस लक्ष्य या ईश्वर का अंश। सत्संग प्राप्त न होने के कारण कभी-कभी विद्वानों को इस बात पर विश्वास नहीं होता।

जिस तरह से हम नदी के जल को लहरों के बिना नहीं जान सकते, जिस तरह हम दृष्टि के बिना आँख को नहीं जान सकते, जिस प्रकार से ध्रुवतारे को आकाश के बिना हम नहीं समझ सकते—उसी प्रकार से हम मानवीय जीवन की उन्नति को गुरु के बिना नहीं समझ सकते हैं। ज्ञान को, ध्यान को, चेतना को, चिंतन को, संस्कार को, विचार को, देश को, परिवेश को, विश्व को जानने, भक्ति को तथा मुक्ति को जानने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है।

स्कंद पुराण के गुरुगीता भाग का वर्णन करते हुए कहा गया है कि गुरु—महिमा का दाता, महिमा का संदेशवाहक, चेतना का सारथी, संस्कारों का संवाहक, प्रेम का प्रतिनिधि होता है और नीति का निर्देशक होता है। वह कुरीतियों को हटाता है तथा सुनीति और संस्कार लाता है। गुरुप्रदत्त ज्ञान व्यक्ति को सर्वतोभावेन विकसित करता है।

किसी कवि ने गुरु शब्द की बड़ी सुंदर व्याख्या की है—

गुरु है तो ज्ञान है,
गुरु है तो ध्यान है,
गुरु है तो मान है,
गुरु है तो यश है,
गुरु है तो कीर्ति है,
गुरु है तो साहित्य है,
गुरु है तो चिंतन है,
गुरु है तो संस्कार है,
गुरु है तो संस्कृति है,
गुरु है तो विकृतियों का विनाश है,
गुरु है तो संस्कृति का सृजन है,
गुरु है तो व्यवहार का दीप जलता है,
गुरु है तो प्रेम का प्रकाश फैलता है,
गुरु है तो ध्यान की जोत जलती है,
गुरु है तो गरिमा का गुलाब खिलता है,
गुरु है तो महिमा के मोगरे महकते हैं,

प्रख्यात विचारक कौटिल्य—चाणक्य नीतिदर्पण के 15वें अध्याय के दूसरे श्लोक में कहते हैं कि—गुरु शिष्य को सफलता की सुधा पिलाता है; गुरु शिष्य को कीर्ति के कलश थमाता है; गुरु शिष्य की प्रसिद्धि की पताका फहराता है; गुरु शिष्य को अमरत्व की राह दिखाता है और गुरु मुक्ति की महिमा से शिष्य का साक्षात्कार कराता है।

गुरु एक तरफ शक्ति का स्रोत है तो दूसरी तरफ भक्ति का आधार है तो तीसरी तरफ मुक्ति का मंत्रदाता है। सद्गुरु ईश्वर का दिया हुआ वरदान है। परमपूज्य गुरुदेव हमारे सर्वस्व हैं। उनकी कृपा से ही हम स्वयं का बोध प्राप्त कर सकते हैं। अत: गुरु पूर्णिमा के इस पुनीत अवसर पर उनके प्रति अपनी श्रद्धा व भक्ति के सुमन अर्पित करना चाहिए। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

ब्रह्मांडस्वरूप शिव को प्रिय है काशी और श्रावण मास

काशी में भगवान शिव द्वादश ज्योतिर्लिंगों के रूप में विराजते हैं। काशी में साक्षात् शिव का निवास है। भगवान शिव को काशी अत्यंत प्रिय है। शिव ही विश्व के नाथ हैं। यही विश्व के नाथ भगवान शिव काशी के होकर काशी विश्वनाथ कहलाए। वास्तुविदों के अनुसार ईशान्य कोण में साक्षात् ईश्वर का निवास होता है। स्वयं वासुदेव भी ईशान्य में निवास करते हैं। घरों में देवालय प्राय: ईशान्य दिशा में ही बनाए जाते हैं। ईशान्य भाग के स्वयंभू देवता शिव हैं और यही देवता ईशानेश्वर महादेव रूप में काशी विश्वनाथ हैं।

शैवागम के अनुसार शिव मंदिर के गर्भगृह के 9 बराबर हिस्से करने के बाद मध्य में शिवलिंग स्थापित किया जाता है। आदि विश्वेश्वर में समूचे परिसर के ईशान्य में काशी विश्वनाथ का शिवलिंग था। उक्त मंदिर जब तोड़ा गया और उसका मलबा ज्ञानवापी तीर्थ में डाला गया तब भी ज्ञानवापी के ईशान्य में उक्त लिंग रखा गया था। ज्ञानवापी पर जब मंदिर बना तब भी विश्वनाथ जी ईशान्य में ही विराजते थे। वर्तमान में मंदिर में मुख्य मंदिर ईशान्य में है और शिवलिंग भी ईशान्य दिशा में स्थित है।

देश भर में काशी के प्रतिरूप में चारों दिशाओं में काशी का भाव है और यही भाव उत्तरकाशी, दक्षिणकाशी के नामकरण का कारण है। पूर्व में भुवनेश्वर वास्तव में शिव समर्पित नगरी है। कहते हैं यह छोटी काशी है। काशी में एक लाख शास्त्रोक्त शिवलिंगों की स्थापना हुई है और छोटी काशी के रूप में भुवनेश्वर में मात्र एक शिवलिंग कम स्थापित है। वहाँ पर भी काशी विश्वनाथ का मंदिर है। जगन्नाथ मंदिर में प्रवेश द्वार के आगे बाईं ओर सबसे पहले श्री काशी विश्वनाथ मंदिर बना हुआ है। उत्तर में श्री केदारेश्वर के परिसर में ईशान्य में ईशानेश्वर के रूप में काशी विश्वनाथ विद्यमान हैं।

रामेश्वर में स्थापना के समय का शुभ मुहूर्त जब निकला जा रहा था, तब बालू का लिंग बनाकर रामेश्वर लिंग की प्राणप्रतिष्ठा कराई गई और बाद में जब हनुमान जी एक अन्य शिवलिंग लेकर पहुँचे तो उसे काशी विश्वनाथ के रूप में प्रतिष्ठा मिली। महाराष्ट्र के नासिक के त्र्यंबकेश्वर ज्योतिर्लिंग के परिसर में भी काशी विश्वनाथ का शिवलिंग विद्यमान है। नासिक को पश्चिम की काशी भी कहा जाता है। उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम चारों दिशाओं में काशी की मान्यता काशी विश्वनाथ की प्रधानता के कारण प्राय: देश भर के प्रमुख मंदिरों में होती है—जिनमें शैव संप्रदाय के ही नहीं अपितु देश-विदेश के सहस्त्रों मंदिर भी सम्मिलित हैं।

नेपाल के विश्वप्रसिद्ध चीनी और जापानी वास्तुशैली के पशुपतिनाथ मंदिर के पास ही बागमती नदी का प्रवाह है। इसी नदी के तट पर राजपरिवार का श्मशान है। यहीं पर ईशान्य दिशा में स्थापित शिवलिंग श्मशानेश्वर, ईशानेश्वर और काशी विश्वनाथ का लिंग स्थापित है। बागमती में स्नान के पश्चात नदी में रहते हुए अंजलि भर जल शिवलिंग पर उछालने की प्रथा है, जो विश्वनाथ को प्रिय है। पवित्रता के भाव से अर्पित जल को श्री विश्वनाथ ग्रहण करते हैं।

ऐसी मान्यता है कि काशी विश्वनाथ बड़े भोले हैं तभी तो वे रावण पर भी प्रसन्न हो गए थे। यह तो नारद थे जिन्होंने रावण को सलाह दी कि कैलास सहित शिव को लंका ले जाओ और रावण ने कैलास को उखाड़ने का प्रयास किया, जिससे शिव की तपस्या भंग हो गई और शिवशापित रावण का राम के हाथों वध हो गया। काशी में समस्त प्रमुख शिवलिंगों की उपस्थिति की भी एक रोचक कथा है।

कहते हैं कि एक बार काशी विश्वनाथ के एक प्रिय भक्त के मन में चारों धाम और द्वादश ज्योतिर्लिंग के दर्शन करने की उत्कंठा जागी। दर्शन हेतु काशी विश्वनाथ से अनुमति माँगने जब वह भक्त आया और उसने अपनी जिज्ञासा प्रकट की तो शिव असमंजस में पड़ गए। भक्त की भक्ति पूर्ण करना भी तो जरूरी था तो ऐसे में भगवान शिव ने उसे काशी छोड़कर कहीं और नहीं जाने को कहा।

रात्रि में भगवान शिव ने उसे अपने समस्त ज्योतिर्लिंगों के दर्शन करा दिए। दूसरे दिन भक्त ने अवधूत शिव को काशी न छोड़ने का आश्वासन दिया तो भोले भंडारी प्रसन्न हो गए और वर माँगने को कहा तो भक्त भावपूर्ण हृदय से बोला—"प्रभु! जैसे आपने मुझे द्वादश ज्योतिर्लिंग स्वरूप का दर्शन कराया, उसी तरह आपका हर भक्त प्राप्त करे।" शिव ने 'तथास्तु' कह दिया और भक्तों के भाव की रक्षा के लिए द्वादश ज्योतिर्लिंग के स्वरूप काशी में पधारे।

काशी में भगवान शिव का साक्षात् वास होने के कारण ही भगवती अपने सभी रूपों में यहाँ विद्यमान हैं। अष्ट मातृकाएँ, नवदुर्गा, नवगौरी, चौंसठ योगिनी, चारों धाम, छप्पन विनायक सभी यहाँ इसलिए विद्यमान हैं; क्योंकि काशी विश्वनाथ के रूप में साक्षात् शिव यहाँ विद्यमान हैं। माता अन्नपूर्णा स्वयं काशी की अन्नदाता हैं। इस प्रकार शिव के विविध स्वरूप दुनिया भर में जहाँ-जहाँ विद्यमान हैं; वहाँ पर विश्वनाथ का होना भी जरूरी है।

भगवान शिव जिस किसी स्थान पर गए और जिस किसी रूप में अपना अंशांश उन्होंने वहाँ अनुप्राणित किया—वहाँ उनका वही रूप पूज्य है। भगवान शिव ही काशी में विश्वनाथ के रूप में काशी विश्वनाथ कहलाए। यह उपस्थिति कहीं पर काशी विश्वनाथ के रूप में है तो कहीं पर ईशानेश्वर के रूप में। काशी का हर कंकड़ भी शिवमय है। प्राणिमात्र काशी विश्वनाथ की काशी में उपस्थिति में शिवस्वरूप है। हर प्राणी भगवान शिव का आत्मरूप है और काशी विश्वनाथ का परमात्मास्वरूप है।

श्रावण मास में शाक-भाजी का त्याग किया जाता है। इन सबका वैज्ञानिक कारण भी है। अब तो कुछ लोग एक पक्ष को भी एक मास मानकर केवल श्रावण और भाद्रपद मास में चातुर्मास्य व्रतानुष्ठान पूर्ण कर लेते हैं, परंतु यह श्रेष्ठ परंपरा नहीं है। श्रावण मास में सत्कर्म, पुण्य कार्य करने से अपार पुण्य-अर्जन होता है। जिस प्रकार वर्ष भर पितरों को तर्पण न करने वाले भी 15 दिनों के पितृपक्ष में तर्पणादि संपन्न करके वर्ष भर तर्पणादि का पुण्य प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार श्रावण मास में शिव जी को जल चढ़ाने का महत्त्व वर्ष भर की पूजा के समान है।

स्नान के विषय में मान्यता है कि **'शतं विहाय भोक्तव्यं, सहस्त्रं स्नानमाचरैत्'**—अर्थात हजार काम छोड़कर स्नान करना चाहिए। काशी का निवासी श्रावण मास में आत्म शिव रूप निज शरीर के स्नान के पश्चात परमात्मरूप श्री काशी विश्वनाथ को गंगा का जल चढ़ाकर स्नान कराता है, यह उसका धर्म है। धर्म का अर्थ कर्मकांड नहीं, बल्कि कर्म है; वह कर्म जिसे मनुष्य धारण करता है—**'धारणाद् इति धर्मः'** यही सूक्त है! जिस कर्म का धारण हो, वही धर्म है। सत्कर्म ही सुधर्म और पापकर्म ही अधर्म है।

श्रावण मास का वैज्ञानिक महत्त्व वर्षा के प्रारंभ से जुड़ा है। भीषण गरमी के बाद होने वाली वर्षा की प्रारंभिक बूँदें पूरे वातावरण में खुशी का संचार करती हैं। कीट-पतंगे, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे और संपूर्ण जीवन पुनः आकार लेते हैं। सर्वत्र हरियाली होती है और तपिश का शमन होता है। यह गरमी के विनाश का, शमन का प्रारंभिक प्रयास होता है, जिससे अंतर्भूत गरमी का भी शमन होता है, इसीलिए मौसम परिवर्तन के काल में कम भोजन स्वास्थ्यप्रद माना गया है। यही कारण है कि श्रावण मास में एक बार भोजन करने का नियम होता है; क्योंकि यह व्रत तप से जुड़ा है।

येन च ऋषिणा द्रष्टो मंत्रः सिद्धिश्च तेन वै।
मंत्रेण तस्य सम्प्रोक्त ऋषिभावः तदात्मकः॥

अर्थात जो मंत्र जिस ऋषि के द्वारा देखा गया, उस ऋषि के स्मरणपूर्वक यज्ञादि में मंत्र प्रयोग करने से उस ऋषि का भाव अनुभव होता है।

श्रावण मास इस कारण से भगवान शिव से अधिक संबंध रखता है; क्योंकि शिव जी ब्रह्मांडस्वरूप हैं। जैसे प्रकृति ब्रह्मांड को स्नान कराती है, उसी प्रकार मनुष्य ब्रह्मांडरूपी शिव श्री काशी विश्वनाथ को स्नान कराते हैं। शिव रूप श्रावण की आराधना के कारण श्रावण मास में सोमवार और प्रदोष व्रत का विधान है। शिव ही एकमात्र स्वप्रचारित देवता हैं; क्योंकि वे ब्रह्मांडस्वरूप हैं। भगवान शिव की साधना से जीवन के कठोर प्रारब्ध कटते हैं और मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। ❑

कैसे करें ध्यान ?

ध्यान क्या है, ध्यान कैसे करें, ध्यान करने की सबसे अच्छी विधि क्या है ? ध्यान कितने समय तक करना चाहिए ? क्या आँखें बंद करके ईश्वर का स्मरण करना ही ध्यान है ? क्या किसी आसन विशेष में बैठकर किसी वस्तु, व्यक्ति या बिंदु पर मन को एकाग्र करना ध्यान है ? आदि अनेक प्रश्न साधकों व जिज्ञासुओं के मन में उठते हैं।

वास्तव में ध्यान ईश्वरप्राप्ति का, ईश्वर की अनुभूति का, परमानंद की प्राप्ति का एक श्रेष्ठ साधन है। ध्यान की कई विधियाँ हैं और उन सबका उद्देश्य एक ही है—ईश्वर की अनुभूति व परमानंद की प्राप्ति। इसे ऐसे महसूस करें कि जैसे पूर्णिमा का चाँद अपने संपूर्ण स्वरूप में चमक रहा है। वह समुद्र की सतह पर प्रतिबिंबित हो रहा है, पर समुद्र में उठ रही ऊँची-ऊँची लहरों पर चंद्रमा का प्रतिबिंब टिक नहीं पा रहा, स्थिर नहीं हो पा रहा। फलस्वरूप हम उसके संपूर्ण स्वरूप का, सौंदर्य का दर्शन, दिग्दर्शन नहीं कर पा रहे। पर अचानक जैसे ही समुद्र में उठने वाली ऊँची-ऊँची लहरें कुछ पल के लिए शांत होती हैं, वैसे ही चंद्रमा अपने पूर्ण, संपूर्ण सौंदर्य, स्वरूप में दिखने लगा और उसके इस अप्रतिम, अनुपम सौंदर्य को देखकर कोई भी हो; आनंदित, आह्लादित, प्रफुल्लित हुए बिना नहीं रह सकेगा।

इसी तरह से यह भी सत्य है कि हमारी आत्मा में भी परमपिता परमात्मा का वास है, पर प्रश्न उठता है कि अपनी आत्मा में ही विराज रहे परमात्मा की हमें अनुभूति क्यों नहीं हो पाती ? ऐसा इसलिए क्योंकि हमारे मन में, हमारे चित्त में भी ऊँची-ऊँची लहरें उठती हैं। हमारे मन में इच्छाओं की, विचारों की, भावनाओं की, वासनाओं की, कामनाओं की ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही हैं। उन लहरों के कारण ही हमें अपने ही भीतर विराजमान परमात्मा के होने की अनुभूति नहीं हो रही। अत: विभिन्न पूजा-पद्धतियों व ध्यान की विधियों का एक ही उद्देश्य है—मन में उठ रही उन सभी लहरों को शांत कर लेना, समाप्त कर लेना।

अब तक जिन साधकों को, तपस्वियों को, योगियों को, ऋषियों को ईश्वर की अनुभूति हो सकी, परम आनंद की अनुभूति हो सकी, वह इसलिए हो सकी; क्योंकि वे मन के पार चले गए। वे मन की लहरों को पार कर सके। वे चित्त में उठने वाली लहरों को शांत कर सके, समाप्त कर सके ।

ध्यान मन की लहरों को शांत करना है, चित्त की लहरों को शांत करना है, मन को इच्छाओं से मुक्त करना है, विचारों से मुक्त करना है, वासनाओं से मुक्त करना है, संस्कारों से मुक्त करना है। मन को ख्यालों से खाली करना है। मन के इच्छाओं, वासनाओं, विचारों, भावों, संस्कारों से मुक्त होते ही अर्थात मन के समाप्त होते ही उसी पल हमारे अंतस् में, हमारी आत्मा में समाधि की महान घटना घट जाती है। हमें हमारी आत्मा में ही प्रकाश रूप परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं। हमारे अंदर आनंद का अजस्र स्रोत फूट पड़ता है। हमारा अंतस् ईश्वरीय आलोक से आलोकित हो उठता है।

यह ऐसा आनंद है जो अवर्णनीय है, अलौकिक है, अद्वितीय है, अनुपम है। यह परम आनंद हमारी आत्मा से ही प्रस्फुटित होता है; क्योंकि हम स्वयं भी सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमात्मा से बने हैं। हम स्वयं भी उन्हीं परमात्मा के अंश हैं, जो आनंदस्वरूप हैं। यह हमारी अपनी ही चेतना है, जो ईश्वरीय चेतना से जुड़कर स्वयं भी सत्-चित्-आनंदस्वरूप, परमात्मस्वरूप हो जाती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि ध्यान की शुरुआत कहाँ से और कैसे करें ? इसकी शुरुआत हम निस्संदेह एकाग्रता से कर सकते हैं। हम जो भी कार्य करें, उसे एकाग्रचित्त होकर करें। यदि हम भोजन पर बैठे हैं तो उस समय हमारी पूरी एकाग्रता भोजन में ही होनी चाहिए। यदि हम खेल रहे हैं तो हमारी पूरी एकाग्रता खेल में ही होनी चाहिए। यदि हम पढ़ रहे हैं तो हमारी पूरी एकाग्रता पढ़ने में ही होनी चाहिए। यदि हम सो रहे हैं तो हमारी पूरी एकाग्रता सोने में ही होनी चाहिए।

इससे हमारा मन अधिक एकाग्र और संवेदनशील होता जाएगा और ध्यान के अनुकूल होता जाएगा। हम भोजन की टेबल पर बैठे भोजन कर रहे होते हैं और राजनीति तथा अन्य विषयों की चर्चाएँ भी चल रही होती हैं। हम स्नान कर रहे होते हैं और अन्य विषयों पर विचार भी कर रहे होते हैं। यह ठीक नहीं; क्योंकि इससे मन की एकाग्रता क्षीण पड़ती है।

हम जिस काम को करें उसमें पूर्णत: एकाग्र हो जाएँ। भोजन करते समय, खेलते समय, सोते समय सिर्फ उसी एक विषय में सोचें। यदि हम सुबह धूप में बैठे हैं तो हम सूर्य की किरणों को यों महसूस करें मानो इन किरणों के माध्यम से सूरज ने अपने हाथ हम तक फैला दिए हैं, मानो सूरज हमें स्पर्श कर रहा हो। हमारे चेहरे पर पड़ती सूरज की गुनगुनाती धूप हमारे हृदय को आंदोलित करने लगे। हम चलते हुए हवा के स्पर्श को महसूस करें मानो हवा के झोंकों ने हमारे संपूर्ण अस्तित्व को छू लिया हो।

यदि हम बरफ को स्पर्श करें, तो ऐसा महसूस करें मानों हमारा संपूर्ण अस्तित्व, हमारा संपूर्ण प्राण ही उसे स्पर्श कर रहा है। यदि हम सरोवर या नदी में उतरकर स्नान करें तो ऐसा महसूस करें कि ब्रह्म ने ही जल का रूप धारण कर लिया है और उसमें डूबकर व भीगकर हमारे रोम-रोम पुलकित हो रहे हैं। यदि कभी हम वृक्ष के किनारे बैठे हैं या वृक्ष से टिककर बैठे हैं तो पूरे शरीर में वृक्ष के स्पर्श को महसूस करें, उसके साथ एकात्म हो जाएँ। इससे हमारी इंद्रियाँ धीरे-धीरे संवदेनशील होती जाएँगी और हम बड़ी आसानी से अपने भीतर प्रवेश कर सकेंगे; अपने हृदय में प्रवेश कर पाएँगे और तब हम एकाग्र हो सकेंगे।

इसके अतिरिक्त हम सुखपूर्वक किसी भी आसन में बैठकर किसी भी रुचिकर विषय, वस्तु, व्यक्ति, बिंदु आदि पर ध्यान कर सकते हैं। ध्यान में बैठते ही हमारे मन में विचारों का बवंडर उठ खड़ा होता है। फलस्वरूप ध्येय वस्तु पर हम एकाग्र ही नहीं हो पाते। तब हम क्या करें? ऐसी स्थिति में हमें उन विचारों को रोकना नहीं है, दबाना नहीं है, वरन उन विचारों को द्रष्टा भाव से, साक्षी भाव से देखते भर रहना है।

उन विचारों को, इच्छाओं को, साक्षी भाव से देखने का चमत्कार ही ध्यान है। ऐसा महसूस करें कि वे सारे विचार हमारे अंदर नहीं, बल्कि बाहर-बाहर से होकर गुजर रहे हैं। वे आकाश में बादलों की तरह इधर-से-उधर आ-जा रहे हैं। हम महसूस करें कि हम तो इन विचारों के साक्षी भर हैं, द्रष्टा भर हैं। हमारा इन विचारों से, इच्छाओं से, संस्कारों से, स्मृतियों से कोई लेना-देना नहीं। हम इनसे प्रभावित ही क्यों हों? फिर ये सारे विचार हमारे मन के बाहर-बाहर से, ऊपर-ऊपर से वैसे ही गुजरते जाएँगे जैसे आकाश मार्ग से चिड़ियों का झुंड गुजर जाता है। इस प्रकार हम धीरे-धीरे निर्विचार होते जाएँगे और अपने अंतर्मन की गहराई में प्रवेश करते जाएँगे।

अपने हृदय की गहराई में उतरते ही हम चाहे जिस किसी भी विषय, वस्तु, व्यक्ति, बिंदु आदि के ध्यान में डूब सकते हैं। हम युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव द्वारा निर्देशित सविता ध्यान, अमृत वर्षा ध्यान, पंचकोश का ध्यान, तीन शरीरों का ध्यान आदि किसी भी ध्यान में डूब सकते हैं।

ध्यान की गहराई में उतर जाने पर हमारा मन वैसे ही मिट जाता है, जैसे समुद्र में उतरते ही नमक समुद्र में ही विलीन हो जाता है। हमको अनुभव होगा कि हम मन की आँखों से ध्यान के विषय, वस्तु, बिंदु आदि को देख रहे थे, पर अब वह मन भी नहीं रहा—वह भी मिट गया। वैसे ही जैसे जिस लकड़ी से, जिस लकड़ी की अग्नि से चिता में आग लगाई जाती है, चिता के जलते ही उस लकड़ी को भी उसी चिता में डाल दिया जाता है। वह लकड़ी भी वहीं भस्मीभूत हो जाती है।

इस प्रकार ध्येय वस्तु का ध्यान करते-करते मन ध्येय वस्तु में ही विलीन हो गया। यह अमन की अवस्था ही ध्यान है। इस अमन की अवस्था में ही साधक अपने अंतरतम में उतरता है, अपने हृदय में प्रवेश करता है और वहाँ प्रतिष्ठित, प्रकाशित, प्रज्वलित आत्मा की अखंड ज्योति का दर्शन करता है।

तब साधक अपनी आत्मा में ही परमात्मा को विराजमान देखता है। उसकी अनुभूति करता है और पल-पल आनंदित होता है। अपने हृदय में बारंबार परमात्मा का स्मरण करते-करते उसकी सारी इच्छाएँ, वासनाएँ मिट जाती हैं। वहाँ परमात्मा का परम प्रकाश आत्मा में ही उतर आता है। यह आनंद अवर्णनीय है, अकल्पनीय है। इसकी अनुभूति कोई ध्यानी ही कर सकता है। कोई सच्चा साधक ही कर सकता है। कोई बुद्धपुरुष ही कर सकता है।

इस प्रकार निरंतर एवं बारंबार ध्यान का अभ्यास करते-करते ध्याता का, साधक का, हर पल ही ध्यानमय हो जाता है, आनंदमय हो जाता है। वह अपने कर्त्तव्य-पथ पर चलता रहता है, चाहे वह व्यापारी हो, चिकित्सक हो, किसान हो, अभियंता हो, विद्यार्थी हो, अध्यापक हो—उसे अपना कार्य करते हुए यह अनुभव होता रहता है कि यह काम मैं नहीं कर रहा हूँ; मैं शरीर से पृथक हूँ। मैं तो द्रष्टा मात्र हूँ, साक्षी मात्र हूँ।

इस प्रकार उसके मन में कर्त्तापन का अभाव हो जाता है। उसे हर पल अपनी आत्मा में परमात्मा की अनुभूति होने लगती है। उसे हर पल एक अपूर्व आनंद का अनुभव होने लगता है। वह स्वयं को परमात्मा का यंत्र मात्र मानकर, अपने कर्त्तव्य कर्म करता जाता है। तब वह कर्त्तव्य कर्मों में लिप्त तो रहता है, पर आसक्त नहीं होता। तब उसके कर्म निष्काम कर्मों में बदल जाते हैं।

ऐसे में साधक सुखासन या पद्मासन में बैठकर ही नहीं, बल्कि खेलते हुए; सोते हुए; हँसते हुए; बोलते हुए; चलते हुए; दौड़ते हुए भी ध्यान में ही होता है। वह बंद आँखों से ही नहीं, बल्कि खुली आँखों से भी ध्यान में ही होता है। अब उसे ध्यान करने के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता; बल्कि ध्यानावस्था से बाहर निकलने के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है।

सचमुच यह अवस्था ही वास्तविक ध्यान की अवस्था है। उसे ऐसा लगता है मानो भगवान हर पल उसके साथ हैं। वह चलता है तो भगवान भी उसके साथ चलते हैं। वह खाता है तो भगवान भी उसके साथ खाते हैं। वह हँसता है तो मानो भगवान भी उसके साथ हँसते हैं। वह कोई कार्य करता है तो मानो भगवान भी उसके साथ होते हैं। वास्तव में यही है ध्यान की वास्तविक स्थिति, जिसे हमें भी प्राप्त करना चाहिए और इसके लिए सतत अभ्यास की आवश्यकता है। ❑

एक संत से उनके शिष्यों ने पूछा—''गुरुवर! रामायण में भगवान राम जी के भक्तों की संख्या अपार है। उनके भ्राता लक्ष्मण एवं भरत से लेकर अनेक ऋषि जैसे—शरभंग, अगस्त्य, भरद्वाज इत्यादि सभी उनके भक्त हैं। इसके अतिरिक्त जटायु, शबरी, नल-नील, अंगद, विभीषण, जामवंत जैसे अनेक भक्तों का वर्णन भी मिलता है। फिर क्या कारण है कि मात्र हनुमान जी को रामदरबार में स्थान प्राप्त हुआ ?''

संत ने उत्तर में कहा—''वत्स! हनुमान जी भक्तशिरोमणि हैं; क्योंकि उनके रोम-रोम में भगवान राम का नाम समाहित हो गया है। इसीलिए उनकी भक्ति की तुलना कर पाना संभव नहीं है। यदि कभी इस विषय में शंका हो तो इस कविता की पंक्तियों को याद कर लेना—

राम माथ, मुकुट राम। राम सिर नयन राम।
राम कान, नास राम। ठोड़ी राम नाम है।
राम कंठ, कंध राम। राम भुजा, बाजुबंद।
राम हृदय अलंकार। हार राम नाम है।
राम वसन, जंघ राम। जानु पैर राम नाम है।
राम मन, वचन राम। राम गला, कटक राम।
मारुति के रोम-रोम। व्यापक राम नाम है।''

वन्यजीवों के साथ सहजीवन है जरूरी

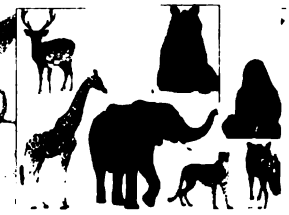

प्रकृति माता है। यह हमारे साथ ही अन्य जीव-जंतुओं का भी पालन-पोषण करती है। प्रकृति में सबको अपने ढंग से जीने का अधिकार प्राप्त है, परंतु बुद्धिमान एवं समझदार समझा जाने वाला इनसान जब इस प्राकृतिक नियम को तोड़ता है तो अन्य जीव-जंतुओं का प्रभावित होना स्वाभाविक है। इसी कारण जीव-जंतु अपनी जीवनशैली परिवर्तित कर रहे हैं। यह सहजीवन के लिए उपयुक्त नहीं है।

अध्ययनों से पता चला है कि बहुत से पशु मानवों से बचने के लिए अब दिन में कम दिखाई देने लगे हैं। अपनी जीवनशैली में परिवर्तन लाते हुए इन प्राणियों ने अब रात में अपनी सक्रियता बढ़ा दी है, ताकि वे मनुष्यों के अतिक्रमण से बच सकें। भले ही यह अस्तित्व को बचाने का उनका प्रयास लगता हो, पर इससे भी वे मानवीय अतिक्रमण से पूरी तरह से अपने आप को बचा कैसे सकेंगे?

इसके अलावा जीवनशैली में इस परिवर्तन के कई प्रतिकूल प्रभाव भी उन्हें झेलने पड़ेंगे; क्योंकि ऐसे प्राणी जो दिन में शिकार करने के आदी हैं, रात में उन्हें ऐसा करने में मुश्किल होगी। हो सकता है कि प्रजनन के लिए अपने जोड़ों की तलाश भी उनके लिए कठिन प्रयास साबित हो। अगर ऐसा हुआ तो इस बदलाव से उनको ज्यादा लाभ नहीं होने वाला है। हो सकता है कि आगे चलकर अस्तित्व पर बन आए संकट से बचने के लिए वे कोई और कारगर तरीका अपनाने लगें।

दुनिया भर में हम इनसान वन्यजीवों के निवास स्थानों पर हमले कर रहे हैं। हम जंगलों को काट रहे हैं और उनके प्राकृतिक निवासस्थलों को तहस-नहस कर रहे हैं। अपने विकास की अंधी चकाचौंध में हम शायद भूल गए हैं कि इस पृथ्वी पर दूसरे प्राणी भी रहते हैं या उन्हें भी रहने का अधिकार है। ग्रीन फैक्ट्स नामक वेबसाइट के अनुसार सन् 2005 में दुनिया में वन क्षेत्र पृथ्वी के कुल भूमि क्षेत्र का 30 प्रतिशत था। एशिया का वन क्षेत्र दुनिया में सबसे कम है।

विश्व बैंक के आँकड़ों के अनुसार भारत में सन् 1990 में कुल भूमि क्षेत्र की तुलना में वन क्षेत्र 21.5 प्रतिशत था, जो सन् 2015 में थोड़ा बढ़कर 23.8 प्रतिशत हो गया, जो पहले की तुलना में थोड़ा उत्साहवर्द्धक लगता है। वन्यक्षेत्रों पर मानव जनसंख्या का जो दबाव पड़ रहा है, उससे वन्यजीवों के अस्तित्व को खतरा है। इसी कारण इन जीवों ने अपने जीने के तरीके में परिवर्तन लाना ज्यादा मुनासिब समझा है।

वन्यक्षेत्रों में हमारी बढ़ती गतिविधियों के कारण उन्होंने अब रात की जिंदगी को अपनाना शुरू कर दिया है। ऐसा निष्कर्ष एक नए अध्ययन से निकाला गया है। अध्ययन में यह पाया गया है कि दिन में भी सक्रिय रहने वाले जीव जैसे लोमड़ी, हिरण और जंगली सूअर अब भय के कारण इनसानों से टकराव टालने के लिए रात में ज्यादा सक्रिय रहने लगे हैं। इस परिवर्तित जीवनशैली के खतरे उनको स्वयं भी भुगतने पड़ते हैं।

विज्ञान की प्रसिद्ध पत्रिका 'साइंस' में छपी रिपोर्ट के अनुसार शोधकर्त्ताओं ने ऐसे 76 अध्ययनों का विश्लेषण किया है, जिसमें दुनिया के 62 महादेशों की 62 स्तनधारी प्रजातियों पर शोध किया गया है। इनमें अमेरिका में पाए जाने वाले ओपोसम से लेकर हाथी तक को शामिल किया गया है।

इन जानवरों के बारे में जानकारी जुटाने के लिए कई तरह की आधुनिक तकनीकों का प्रयोग किया गया है, जिनमें जीपीएस से लेकर गति-संवेदी कैमरे शामिल हैं। जिन पशुओं का अध्ययन किया गया उनके बारे में पता चला कि रात ढलते ही वे पहले की तुलना में ज्यादा सक्रिय हो जाते हैं। उदाहरण के लिए ऐसे स्तनधारी जीव जो पहले दिन और रात में बराबर सक्रिय रहते थे, अब उनकी रात की सक्रियता 68 प्रतिशत ज्यादा हो गई है।

शोधकर्त्ताओं के दल ने यह भी पाया कि इन पशुओं को भले ही लोग लक्ष्य न करते हों और वे जंगलों में किसी अन्य तरह की गतिविधियों में शामिल हों, जिसका उद्देश्य पशुओं को नुकसान पहुँचाना नहीं है—इसके बावजूद इन

पशुओं ने इसको लेकर भी अपना यही रुख दिखाया है। जरूरी नहीं कि शिकार की आशंका से ही इन पशुओं ने अपने दैनिक जीवन में यह परिवर्तन किया है, बल्कि मनुष्यों की किसी भी बढ़ती गतिविधि के प्रति उनका यह रुख रहा हो। शोधकर्त्ताओं का मानना है कि हिरन सिर्फ शिकार के डर से ही आदमियों से बचता नहीं फिरता, बल्कि अगर उसको जंगल में लोग किसी अन्य तरह की गतिविधि में शामिल दिखाई देते हैं तो भी वह दिन की अपनी सक्रियता कम कर लेता है।

इस तरह इन पशुओं ने एक तरह से मानवों के साथ सहअस्तित्व का नया तरीका ढूँढ़ निकाला है। अगर वे ऐसा नहीं करते तो उनके सहअस्तित्व पर खतरा बढ़ जाता। शोधकर्त्ताओं का यह भी मानना है कि इन पशुओं ने अपनी जीवनशैली में यह बदलाव लाकर संभवत: संरक्षणकर्त्ताओं को यह संकेत देने की भी कोशिश की है कि उनके संरक्षण की योजनाओं में अब किस तरह का बदलाव किया जाए। उदाहरण के लिए मानवीय गतिविधियों को उस दौरान प्रतिबंधित रखा जाए, जब कोई विशेष प्रजाति का प्राणी ज्यादा सक्रिय होता है।

शोधकर्त्ताओं का कहना है कि रात की दिनचर्या अपनाने वाले पशुओं को इससे कई मुश्किलों का सामना करना पड़ सकता है। चूँकि वे दिन में शिकार करने के आदी हैं, इसलिए रात में शिकार कर पाने की उनकी क्षमता पर इसका असर होगा। हो सकता है कि रात में उनको प्रजनन के लिए जोड़े की तलाश में भी कठिनाई होती है, जो कि अंतत: उनकी संख्या को कम करेगा। चूँकि रात में सक्रिय होना उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं है। ऐसा उन्हें अपना अस्तित्व बचाने के लिए करना पड़ रहा है, यह बदलाव उनके जीवन को प्रभावित कर सकता है। वन्यजीवों को बचाने का प्रयास कर रहे लोगों की भी मुश्किलें इस कारण बढ़ गई हैं; क्योंकि उन्हें नहीं पता कि उनकी दिनचर्या में यह बदलाव उनके अस्तित्व को अंतत: कैसे प्रभावित करेगा।

वन्यजीवों के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए उचित एवं कारगर प्रयास करने की आवश्यकता है, जिससे वे अपनी सहज एवं सामान्य जीवनशैली अपना सकें। प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुए सहजीवन की अवधारणा को अपनाना चाहिए। ❑

दीर्घतपस नामक एक ब्राह्मण के दो पुत्र हुए—उनके नाम पुण्य व पावन रखे गए। पुण्य ने तप द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया। उसके रोग, शोक, मोह नष्ट हो गए। पावन शिक्षित तो था, परंतु आत्मज्ञान प्राप्त न कर सका। एक दिन दीर्घतपस का देहांत हो गया, इस कारण पावन बहुत व्यथित हुआ। कुछ काल पश्चात उसकी माता का भी देहावसान हो गया। अब तो पावन के शोक का कोई पारावार न रहा।

पुण्य ने समझाया—"तात! हमारे माता-पिता ने इस लोक में धर्म और पुण्य का पर्याप्त अर्जन किया, सो वे जीवनमुक्त हो गए। शरीर तो वस्त्र की तरह है, आत्मा अनेक शरीर बदलती रहती है, उसके लिए दु:ख किस बात का?" इतना समझाने पर भी पावन को बोध न हुआ तो पुण्य ने उसे योगदृष्टि से पिछले कई जन्मों का वृत्तांत दिखाया। वही पावन पिछले जन्मों में वानर, राजपुत्र, पक्षी आदि बना था। यह देखकर पावन का मोह छूटा और वह आत्मज्ञान प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर हो चला।

जीवन की सही समझ

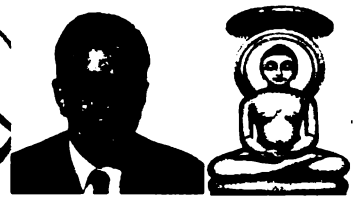

सुख-दु:ख एक समुच्चय की तरह से हैं। जीवन में समस्त संभावनाएँ निहित हैं। हम सब अच्छे जीवन की, सफलता की और श्रेयस की कामना करते हैं, लेकिन जीवन तो उतार और चढ़ाव का खेल है। हम सभी कभी-न-कभी अवसाद और तनाव से आहत होते हैं, तो कभी दु:खों से भी हमारा साक्षात्कार होता है। दु:खों एवं पीड़ाओं का एहसास जीवन में निरंतर बना ही रहता है। जिंदगी में हमेशा सब कुछ अच्छा और सही ही हो ऐसा कैसे संभव है? किसी की जिंदगी में ऐसा नहीं होता। व्यापार, नौकरी, सेहत या रिश्ते इनमें कोई-न-कोई परेशानी चलती ही रहती है। गलतियों से, दु:खों से कब तक बचा रहा जा सकता है?

लेखक तोबा बीटा कहते हैं—"कोशिशें करने से सब सदा सही हो यह जरूरी नहीं, पर ऐसा करने से हमारी गलतियाँ जरूर कम हो जाती हैं।" हर सुबह हम इसी सोच और संकल्प के साथ दिन शुरू करते हैं कि हमें अपने व्यक्तित्व निर्माण में कुछ नया करना है, नया बनना है, पर हम सोचें कि क्या हमने निर्माण की प्रक्रिया में नए पदचिह्न स्थापित करने के प्रयास किए? क्या ऐसा कुछ कर सके कि स्वयं की नजर में हमारे कर्तृत्व का कद ऊँचा उठ सके? कहीं ऐसा तो नहीं कि हम भी आम आदमी की तरह यही कहें कि क्या करें 'समय ने साथ नहीं दिया।' यदि ऐसा हुआ तो हम फिर एक बार दर्पण में स्वयं का चेहरा देखकर उसे न पहचानने की भूल कर बैठेंगे।

अतीत में हमने क्या खोया, क्या पाया, इस गणित को हम एक बार रहने दें अन्यथा असफल महत्त्वाकांक्षाएँ, लापरवाह प्रयत्न, कमजोर निर्णय और अधूरे सपने हमारे रास्ते की रोशनी छीन लेंगे। निराशा से हमें भर देंगे। इसलिए सिर्फ जीवन के इस आदर्श को सार्थकता देने की कोशिश करें कि 'हमें वही बनना है, जो सच में हम हैं।' क्योंकि सारी समस्या का मूल यही है कि हम जो दीखते हैं, वह होते नहीं हैं। जीवन के इस दोहरेपन में सारी श्रेष्ठताएँ अपना अर्थ खो बैठती हैं।

आज इन पंक्तियों की सच्चाई को कौन नकारेगा कि गरीब की गरिमा, सादगी का सौंदर्य, संघर्ष का हर्ष, समता का स्वाद और आस्था का आनंद, ये सब आचरण से पतझर के पत्तों की तरह झर गए हैं। जरूरी नहीं कि किसी अन्य के अपने बनाए नियम हम पर भी सही साबित हों। परेशानी तब आती है, जब हम बिना सोचे-समझे दूसरे का अनुसरण करने लगते हैं।

इसके बजाय हमें हमेशा अपनी जड़ों, अपने विचारों पर विश्वास रखना चाहिए। हम अपनी गलतियाँ नहीं देखते, पर दूसरों की गलतियों पर ज्यादा ही कठोर हो जाते हैं। होना यह चाहिए कि हम अपनी गलतियों के लिए भले ही कठोर हो जाएँ, पर दूसरों को आसानी से माफ कर दें। यों कभी-कभी दूसरों को परखना पड़ जाता है, पर उसके लिए जरूरी है कि मन पूर्वाग्रह से मुक्त हो। लेखक क्रिस जैमी कहते हैं—"किसी को जानना व समझना उतना मुश्किल नहीं है, जितना अपने पूर्वाग्रहों को परे रखना है।"

समय के साथ आदमी बदलता है, मगर जीवनमूल्य नहीं बदलते। दायरे और दिशाएँ बदलती हैं, मगर आदर्श तथा उद्देश्य नहीं। बदलने की यह बात जीवन का सापेक्ष दर्शन है। आज समय ऐसे व्यक्तित्व की प्रतीक्षा कर रहा है जो खुद को बदलने में विश्वास रखता हो और उसी दिशा में प्रयत्न करता हो। जो यह जानता हो कि बुराइयों की जड़ें कमजोर दिखती हैं, पर तब हमारे सक्षम हाथ उन्हें नहीं उखाड़ पाते; क्योंकि वे तेजी से फैलती हैं।

आज ऐसे व्यक्तित्व की जरूरत है, जो दूषित संस्कृति से स्वयं को अनछुआ रखकर सत्संस्कारों की परंपरा को पीढ़ियों तक पहुँचाना जानता हो। जो मौलिकता और निर्भयता के साथ सही दिशा में सोचता हो व सही निर्णय लेता हो। जिसकी संवेदनशीलता में करुणा, संतुलन, धैर्य और विवेक जुड़े हों। आवश्यकता है ऐसे व्यक्तित्व की, जो शक्ति का सही नियोजन करना जानता हो; जो समय के साथ चलना, संभावनाओं को मूर्तरूप देना, दृष्टिकोण को सम्यक स्वरूप देना जानता हो।

शुभ के स्वप्नों को अगर आकार देना है तो भगवान महावीर के इस संदेश को अपने जीवन से जोड़ना होगा—'खणं जाणाहि पंडिए' हम क्षणजीवी बनें। न अतीत की चिंता करें व न भविष्य की कल्पना में उलझें। सिर्फ आज को जीने का अप्रमत्त प्रयत्न करें। यही हर दिन की सुबह का सच्चा स्वागत है। जिंदगी है तो चुनौतियाँ तो होंगी ही। कुछ चुनौतियों से हम आसानी से पार पा लेते हैं, पर कुछ हमसे खुद को बदलने की माँग करती हैं। कामयाबी इस पर निर्भर करती है कि हम कितने बेहतर ढंग से खुद को बदल पाते हैं।

जेन मास्टर मैरी जैक्सन कहती हैं—''अपनी उलझनों का सामना करते हुए अनजान चीजों को गले लगाना हमें विकास की ओर ले जाता है। हमें आगे बढ़ाता है।'' कोई घटना हो—हम दो तरह से चीजों को देखते हैं। कभी हम उसमें अच्छा देखते हैं तो कभी बुरा। इनका परिणाम उसी दृष्टिकोण के अनुरूप आता है। लेखिका व वक्ता गैब्रियल बर्नस्टेन कहती हैं—''हम इसके लिए जिम्मेदार नहीं हैं कि हमारी आँखें क्या देखती हैं; हम जिम्मेदार इस बात के लिए हैं कि हम परिस्थितियों को कैसे अपनाते हैं।''

मनोवैज्ञानिक सलाहकार डॉ. रॉबर्ट वुड्स ने कहा था—''हमारी प्राथमिकता क्या है? अगर हम स्वयं को प्राथमिकता देते हैं तो हम जान-बूझकर गलतियाँ नहीं करेंगे। अगर सोची-समझी साजिश के तहत हम गलती कर रहे हैं तो इसके नतीजे बुरे हो सकते हैं। अनजाने में हुई गलतियाँ, चाहे काम हो या बात, उन्हें समय रहते सँभाला जा सकता है।'' हम टूट न जाएँ, कोई हमें मूर्ख न बना दे, इस डर से हम ताउम्र खुद को कठोर बनाने में लगे रहते हैं। दु:खों को दबाकर खुद को मजबूत दिखाने की कोशिश करते रहते हैं। तब भूल जाते हैं कि अक्सर सीधे तने पेड़ ही आँधी-तूफान में सबसे पहले गिर जाते हैं व सबसे पहले काट दिए जाते हैं।

लेखक सी जॉयबेल सी कहते हैं—''कठोर चीजें ही पहले टूटती हैं, मुलायम नहीं। कड़क चीजें तो जरा-सी चोट में टुकड़े-टुकड़े हो जाती हैं।'' कुछ नया करने की चाहत रखने वाले सवालों से नहीं डरते। ऐसा नहीं कि वे सिर्फ दूसरों से सवाल पूछते हैं, जरूरत होने पर खुद से भी सवाल करते हैं। यह रास्ता उन्हें अपने लक्ष्यों और सपनों के करीब ले जाता है, यही इनसान के लिए उजली सुबह होती है। जीवन की सच्ची समझ जीवन में छिपी हुई है। अत: हम जब स्वयं को समझने लगते हैं तो जीवन जीना आसान एवं सहज हो जाता है व जीवन की संभावनाएँ जाग्रत हो जाती हैं। जीवन में विकास के लिए जीवन की सही समझ आवश्यक होती है। ❑

एक गुरु के दो शिष्य थे, दोनों ईश्वरभक्त थे। दोनों ईश्वर-उपासना के बाद रोगियों की सेवा किया करते थे। एक दिन उपासना के समय ही कोई कष्ट-पीड़ित रोगी आ गया। गुरुजी ने पूजा कर रहे शिष्यों को बुलवाया। शिष्यों ने कहा—''अभी थोड़ी पूजा बाकी है, पूजा समाप्त होते ही आ जाएँगे।''

गुरुजी ने दोबारा बुलवाया। वे इस बार आ तो गए, पर उनका मन किंचित खिन्न था। गुरुजी उन्हें समझाते हुए बोले—''वत्स! जप-पूजा का क्रम तो कभी भी संपन्न किया जा सकता है, पर पीड़ित मानवता की सेवा का सौभाग्य तो विरलों को ही मिलता है। तुम्हारे जप का पुण्य तो तुम्हें समय रहते मिलता, पर उस पीड़ित की सेवा का संतोष तो हाथोहाथ मिल जाता, जिससे तुम वंचित रह गए।''

यह सुनकर शिष्य अपने इस कृत्य पर अत्यंत लज्जित हुए और उस दिन से सेवा को अधिक महत्त्व देने लगे।

चाय का श्रेष्ठ-विकल्प प्रज्ञा पेय

आज चाय एक लोकप्रिय पेय है। इतना लोकप्रिय है कि इसके बिना खातिरदारी अधूरी मानी जाती है। सुबह उठते ही बेड टी, फिर चाय-नाश्ता, दोपहर को थकने पर चाय की चुस्की, यहाँ तक कि दवाइयों के साथ भी चाय-बिस्कुट का चलन। उपवास तक में इसका उपयोग बहुतायत से होता है।

तनाव में मन ठीक करने के लिए भी लोग चाय ही लेते हैं। तात्कालिक रूप से इससे कुछ ताजगी व स्फूर्ति का एहसास अवश्य होता है, लेकिन दीर्घकाल में यह एक लत बन जाती है, जो नाना प्रकार के रोगों का कारण बनती है।

चाय में टेनीन, थाइन, कैफीन, साइनोजेन, स्ट्रिनाइन जैसे विषाक्त तत्त्व पाए जाते हैं, जो शरीर के लिए किसी भी दृष्टि से आवश्यक एवं अनिवार्य नहीं हैं, बल्कि शरीर को विविध रूप में क्षति ही पहुँचाते हैं। चाय के सेवन से शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता भी नष्ट होती है एवं जल्दी-जल्दी रोग जन्म लेते हैं।

चाय को दूध के साथ लेने पर यह पेट में अम्लता पैदा करती है, जो बदहजमी से लेकर कब्ज एवं पेट के रोगों का कारण बनती है। इसके साथ शरीर से निस्सृत कार्बोलिक एसिड गुरदों पर हानिकारक प्रभाव डालता है, जिससे बहुमूत्र की समस्या भी पैदा होती है।

इसके अतिरिक्त उच्च रक्तचाप, श्वास रोग, अनिद्रा, भ्रम आदि रोग भी हो जाते हैं। चाय में विद्यमान टेनीन तत्त्व आमाशय की झिल्ली में तनाव लाकर पाचन तंत्र को कमजोर करता है और इसमें उपस्थित कैफीन तत्त्व कब्ज का कारण बनता है। चाय में विद्यमान साइनोजेन, स्ट्रिनाइन जैसे विषाक्त तत्त्व शरीर के साथ मानसिक क्षमता का भी ह्रास करते हैं।

एक तरह से चाय शरीर पर एलोपैथिक दवाओं की तरह घातक प्रभाव डालती है। चाय के नियमित एवं अत्यधिक सेवन से शरीर में सुस्ती एवं शिथिलता, कब्ज, रक्त विकार, अम्लपित्त, वीर्य विकार, मधुमेह, राजयक्ष्मा आदि व्याधियाँ हो जाती हैं।

परमपूज्य गुरुदेव ने चाय की इन हानियों को देखते हुए प्रज्ञा पेय ईजाद किया था, जिसमें ब्राह्मी, शंखपुष्पी, तुलसी, सौंफ, आज्ञाघास, लाल चंदन, दालचीनी, नागरमोथा, तेजपत्र, अर्जुन छाल, शरपुंखा, मधुयष्टि तथा इलायची जैसी स्वास्थ्यवर्द्धक जड़ी-बूटियाँ प्रयुक्त की गई हैं। ऐसे में प्रज्ञा पेय पीने से लाभ-ही-लाभ हैं, हानि कोई नहीं।

प्रज्ञा पेय शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाती है। शरीर से निस्सृत होने वाले कार्बोलिक एसिड की मात्रा को प्रभावित नहीं करती और न ही अंत:स्रावी ग्रंथियों एवं हॉर्मोन्स को प्रभावित करती है, वरन प्राकृतिक रूप से नियमित एवं नियंत्रित करती है।

इसमें प्रयुक्त सौंफ एवं शरपुंखा आमाशय की झिल्ली को तनावमुक्त कर, पाचन तंत्र को मजबूत कर कब्ज का नाश करते हैं। नागरमोथा गुरदों पर अच्छा प्रभाव डालकर बहुमूत्र एवं अन्य सभी मूत्ररोगों को नष्ट करता है। अर्जुन छाल हृदय रोगों एवं श्वास रोग में लाभकारी रहती है। अपनी सात्त्विक प्रकृति के कारण तुलसी एवं इलायची मन को शांत एवं शुद्ध करते हुए भावनात्मक रूप से सुदृढ़ करते हैं।

प्रज्ञा पेय पर चाय की तुलना में खरच भी कम आता है। प्रज्ञा पेय के नियमित सेवन से शरीर में स्फूर्ति रहती है। कब्ज, रक्त विकार, अम्लपित्त, वीर्य विकार, मधुमेह, राजयक्ष्मा, वातरोग आदि विकार ठीक हो जाते हैं। प्रज्ञा पेय का नाश्ते में, औषधि एवं व्रत-उपवास में उपयोग किया जा सकता है।

इस तरह दिव्य जड़ी-बूटियों का संयुक्त मिश्रण प्रज्ञा पेय आयुर्वेद का निचोड़ है। इसको अपने स्वाद एवं प्रकृति के अनुरूप न्यूनाधिक मात्रा में दूध के साथ या इसके बिना, शक्कर के साथ या इसके बिना लिया जा सकता है। इसमें किसी तरह की कोई हानि नहीं और यह चाय का श्रेष्ठतम विकल्प है। आवश्यकता स्वयं इसे आजमाने की है व दूसरों को इस स्वास्थ्यवर्द्धक पेय को अपनाने के लिए प्रेरित करने की है। ❑

जीवन का परम लक्ष्य

भगवद्भक्त आनंदनाथ का जन्म एक कुलीन व धार्मिक परिवार में हुआ था। उनके पिता भगवान सूर्य के परम उपासक थे। वे नित्य सूर्य ध्यान, महामंत्र गायत्री का जप व अग्निहोत्र किया करते थे। वे ईश्वर की उपासना के साथ-साथ समाज सेवा करने के लिए सदा तत्पर रहा करते थे। वे जगह-जगह श्रीमद्भागवत महापुराण की कथा करने जाते थे व नियमित धर्म, संस्कृति व भगवत्प्रचार किया करते थे। उनके स्वयं के जीवन में संयम, सेवा, सदाचार होने के कारण उनके मुख से निस्सृत भगवान की कथाओं का श्रोताओं पर बड़ा प्रभाव पड़ता था।

उनकी वाणी में तो मानो साक्षात् सरस्वती विराजती थीं। कथाओं में दानस्वरूप उन्हें जो भी धन प्राप्त होता था, उसे वे दीन-दुखियों व अन्य जरूरतमंद लोगों को दे दिया करते थे। ऐसे धार्मिक-आध्यात्मिक परिवेश में पले-बढ़े आनंदनाथ को धार्मिक-आध्यात्मिक संस्कार मानो विरासत में मिले थे।

उनके पिता जब नित्य सूर्य का ध्यान करते तो बालक आनंदनाथ भी वैसा ही किया करते। पिता जब अग्निहोत्र करते तो बालक आनंदनाथ भी पिता के साथ अग्निहोत्र करते। पिता जब शास्त्रों का स्वाध्याय करते तो बालक आनंदनाथ भी उनका श्रवण करते। वे जैसे-जैसे बड़े होते गए, वैसे-वैसे भगवान के प्रति उनकी भक्ति भी बढ़ती गई।

धर्म, अध्यात्म, आत्मा-परमात्मा संबंधी कई प्रश्न उनके मन में उठते और उनके पिता अपने शास्त्र ज्ञान से उनके प्रश्नों का समाधान किया करते। उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेने के पश्चात आनंदनाथ भी अपने अन्य साथियों की तरह किसी बड़े रोजगार की तलाश में घर से बाहर निकलना चाहते थे, पर उनके मन में बार-बार संसार की नश्वरता व ईश्वरदर्शन करने के विचार आने लगे। वे रात भर मन में उठ रहे प्रश्नों के द्वंद्व में करवटें बदलते रहे। उनके मन में प्रश्न उठते रहे—क्या इस अनित्य संसार में धन-उपार्जन ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य होना चाहिए या धन-उपार्जन के साथ भगवद्भक्ति करते हुए जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करना चाहिए? यह शरीर नश्वर है, संसार नश्वर है तो फिर लोग भौतिक सुखोपार्जन के पीछे ही जीवन भर क्यों भटकते फिरते हैं?

इन प्रश्नों, विचारों, द्वंद्वों के बीच सुबह हो गई। आनंदनाथ नित्यक्रिया से निवृत्त होकर अपने पिता के पास पहुँचे, जो अभी-अभी अग्निहोत्र संपन्न कर अपने घर के आँगन में बैठे थे। अपने मन के सारे प्रश्नों, द्वंद्वों को आनंदनाथ ने अपने पिता के समक्ष रखा। शास्त्रज्ञ व ईश्वरपरायण पिता ने कहा—"पुत्र! जीवन-निर्वाह के लिए धन का उपार्जन अवश्य ही करना चाहिए, पर धन-उपार्जन को जीवन का परम लक्ष्य कभी नहीं बनाना चाहिए। व्यक्ति के पास भौतिक शरीर की, भौतिक जीवन की, सुख-सुविधाएँ अवश्य होनी चाहिए, पर यह देवदुर्लभ मानव जीवन भौतिक सुखोपार्जन में ही नहीं व्यतीत होना चाहिए। हमारे भौतिक शरीर में ही परमात्मा का वास है। हमें इस जीवन में भगवद्भक्ति करते हुए अपनी आत्मा की मुक्ति का मार्ग भी प्रशस्त करना चाहिए। मानव जीवन का यही परम लक्ष्य है। पुत्र! तुम्हें ईश्वरकृपा से जीवन-निर्वाह के लिए धन की कभी भी कमी नहीं होगी।"

उनके पिता आगे बोले—"ज्ञानदान सबसे बड़ा दान है। आज अज्ञान व अभाव में डूबे मानव समाज को ज्ञान की बड़ी आवश्यकता है। पुत्र! तुमने पाठ्यपुस्तकों से अपार बौद्धिक ज्ञान अर्जित कर लिया है। भौतिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए यह अभीष्ट भी है, पर अपनी आत्मा को आह्लादित व आनंदित करने के लिए एवं जीवन-मरण के बंधन से मुक्त होने के लिए तुम्हें आत्मिक ज्ञान, आध्यात्मिक ज्ञान भी अर्जित करना चाहिए। पहले तुम नित्य जप-तप, ध्यान-भक्ति के माध्यम से इसे अर्जित करो तत्पश्चात इस अनमोल संपदा को तुम जन-जन के बीच प्रसारित करो, जिससे मानव समाज को भी भवबंधनों से मुक्ति मिल सके, अज्ञान व अभाव से मुक्ति मिल सके।"

पिता के सत्संग से आनंदनाथ के सारे द्वंद्व मिट गए। उन्हें उनके सारे प्रश्नों के समाधान मिल गए। वे पिता की

आज्ञानुसार अपना गृहकार्य करते हुए, जीविकोपार्जन करते हुए नित्य जप-तप, ध्यान-भक्ति तथा स्वाध्याय करने लगे। पिता की तरह वे भी ध्यान-साधना में लीन होने लगे, शास्त्रों में पारंगत हो चले और तत्पश्चात भगवद्धर्म के प्रसार हेतु जन-जन के बीच भी भ्रमण करते रहे। वे आजीवन पिता के बताए हुए मार्ग पर चलते रहे। जनसेवा के माध्यम से इस प्रकार उन्होंने अपने जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त किया। ❑

एक दिन राजा भोज गहरी निद्रा में सोए हुए थे। उन्हें स्वप्न में एक अत्यंत तेजस्वी वृद्ध पुरुष के दर्शन हुए। भोज ने उससे पूछा—''महात्मन्! आप कौन हैं?'' वृद्ध ने कहा—''राजन्! मैं सत्य हूँ। तुझे तेरे कार्यों का वास्तविक रूप दिखाने आया हूँ। मेरे पीछे-पीछे चला आ और अपने कार्यों की वास्तविकता को देख।''

राजा उस वृद्ध के पीछे-पीछे चल दिए। राजा भोज बहुत दान, पुण्य, यज्ञ, व्रत, तीर्थ, कथा-कीर्तन करते थे। उन्होंने अनेक कुएँ, मंदिर, तालाब, बगीचे आदि भी बनवाए थे। राजा के मन में इन कर्मों के कारण अभिमान आ गया था। वृद्ध पुरुष के रूप में आया सत्य राजा भोज को अपने साथ उसकी कृतियों के पास ले गया। पहले वह राजा को फल-फूलों से लदे बगीचे में ले गया। वहाँ जैसे ही सत्य ने पेड़ों को छुआ, सब एक-एक करके ठूँठ हो गए। राजा आश्चर्यचकित रह गया।

इसके बाद सत्य राजा भोज को मंदिर ले गया। सत्य ने जैसे ही उसे छुआ, वह खंडहर के रूप में परिणत हो गया। वृद्ध पुरुष ने राजा के यज्ञ, तीर्थ, कथा, पूजन, दान आदि के निमित्त बने स्थानों, व्यक्तियों, उपादानों को ज्यों ही छुआ, वे सब राख हो गए। राजा यह सब देखकर विक्षिप्त-सा हो गया। सत्य ने कहा—''राजन्! यश की इच्छा के लिए जो कार्य किए जाते हैं, उनसे केवल अहंकार की पुष्टि होती है, धर्म का निर्वहन नहीं। सच्ची सद्भावना से निस्स्वार्थ होकर कर्त्तव्य भाव से जो कार्य किए जाते हैं, उन्हीं का फल पुण्य रूप में मिलता है।'' इतना कहकर सत्य अंतर्धान हो गया। राजा ने निद्रा टूटने पर स्वप्न पर गहरा विचार किया और सच्ची भावना से कर्म करना प्रारंभ कर दिया।

पदार्थ से चेतना की ओर

विज्ञान ब्रह्मांड के मूल तत्त्व को गॉड पार्टिकल कहकर पुकारता है। 10 अरब डॉलर खरच करके 6 वैज्ञानिकों ने दिन-रात की मेहनत के बाद यह दावा किया है कि सृष्टि की रचना में जिस जादुई कण ने बीज का काम किया। उस तत्त्व के बहुत पास तक मानव सभ्यता पहुँच गई है। हिग्स बोसोन फील्ड का वर्णन करते हुए वॉशिंगटन पोस्ट ने लिखा है कि यह ऐसा पानी है, जिसमें पूरी सृष्टि तैरती है। यह सृष्टि के केंद्र में है और इसी की बदौलत दुनिया है। आखिर हिग्स बोसोन है क्या? यह वही कण है जो प्रोटोन, इलेक्ट्रॉन और न्यूट्रॉन को दुनिया बनाने की ताकत देता है।

माना जाता है कि इस कण के बिना इस सृष्टि में किसी चीज का अस्तित्व ही नहीं हो सकता है। यह वह कण है, जो हर चीज में भार प्रदान करता है और खुद लुप्त हो जाता है, इसीलिए इसे ईश्वरकण कहा गया है। भार वह चीज है, जो किसी चीज को अपने अंदर रख सकती है, अगर कुछ नहीं होगा तो फिर किसी चीज का अस्तित्व नहीं होगा; क्योंकि परमाणु उसके भीतर घूमते रहेंगे, लेकिन भार के बिना जुड़ेंगे ही नहीं। हिग्स बोसोन उस अदृश्य शक्ति का मूर्तरूप है, जो स्पेस में हर वस्तु को भार देता है। इसके बगैर हर चीज भागती रहेगी और कहीं टिकेगी ही नहीं। इसके बगैर न तो किसी परमाणु का अस्तित्व है और न ही जिंदगी के बारे में सोचा जा सकता है।

विज्ञान की दुनिया में गॉड पार्टिकल की परिकल्पना सबसे पहले सन् 1964 में ब्रिटिश वैज्ञानिक पीटर हिग्स ने की थी, हिग्स बोसोन कण के नाम में 'हिग्स' पीटर हिग्स से लिया गया है; जबकि 'बोसोन' भारतीय वैज्ञानिक सत्येंद्र नाथ बोस के नाम से रखा गया है। सत्येंद्र नाथ बोस ने बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन के साथ मिलकर बोस-आइंस्टीन स्टेटिस्टिक्स और बोस-आइंस्टीन कंडेन्सेट की थ्योरी दी थी। क्वांटम फिजिक्स के क्षेत्र में बोस के उम्दा काम के सम्मान में ईश्वर कण का नाम 'हिग्स बोसोन' रखा गया है।

इस बड़ी खोज के बाद एक नई बहस छिड़ गई है। एक प्रतिष्ठित अखबार के एक ब्लॉग का शीर्षक है—'क्या हिग्स बोसोन की खोज नए धर्म को जन्म देगी?' तर्क दिया गया है कि महान आत्माओं ने कई धर्मों की शुरुआत की है, अब संभव है कि इस विचार (हिग्स बोसोन की उत्पत्ति का विचार) के इर्द-गिर्द एक धर्म खड़ा हो जाए, वैसे भी इस कण को ईश्वर कण का नाम दे ही दिया गया है। ईश्वर कण को समझने के लिए किसी नए धर्म की जरूरत नहीं है। हमारे अध्यात्म में इतनी गहराई है, जिसमें हमें इस नई खोज के अनसुलझे पहलुओं का जवाब मिल सकता है।

हमारी आध्यात्मिक परंपरा का केंद्रीय विचार ही है कि कण-कण में ईश्वर का निवास है, इसीलिए हम सबमें असीम संभावनाओं का वास है, हम सबमें असीम ऊर्जा का संचालन है, हम सभी एक ईश्वर का हिस्सा हैं और हम सबमें दुनिया की सारी विविधता और सारी समानता एक साथ बसती है।

यह अध्यात्म, विज्ञान से इतर नहीं है, बल्कि उसका विस्तार ही वह वजह है कि जहाँ विज्ञान की सीमा खतम होती है—अध्यात्म की सीमा वहीं से शुरू हो जाती है। हर महान आत्मा, कालजयी कार्य के पीछे एक चमत्कार होता है, जिसकी परिकल्पना विज्ञान में नहीं है, लेकिन अध्यात्म में उसे आत्मसात् करने की क्षमता है।

अल्बर्ट आइंस्टीन और मैडम क्यूरी जैसे महान वैज्ञानिकों को भी अध्यात्म का ज्ञान था, उसकी अनुभूति थी। हिग्स बोसोन की खोज में हमें बताया है कि अध्यात्म का मूल विचार कण-कण में भगवान की उपस्थिति का वैज्ञानिक आधार है। गॉड पार्टिकल वही कण है, जो सृष्टि के मूल में है। इस खोज के बाद विज्ञान ने एक नई विधा की खोज की है, जिससे उसे नए आयामों को समझने में मदद मिलेगी। इस खोज के बाद विज्ञान को चमत्कार को समझने की समझ मिलेगी।

दरअसल विज्ञान और अध्यात्म में विरोधाभास नहीं है, ये दोनों वस्तुत: एक सिक्के के ही दो पहलू हैं। विज्ञान से

हमें तार्किकता मिलती है तो अध्यात्म मानवीय भावनाओं से साक्षात्कार कराता है। विज्ञान हमें मशीन बनाना सिखाता है तो अध्यात्म हमें उस मशीन को भलाई के लिए इस्तेमाल करना सिखाता है। विज्ञान हमें 'मैं' बनाता है तो अध्यात्म इस 'मैं' को 'हम' का हिस्सा बनाना सिखाता है।

विज्ञान स्वार्थ है तो अध्यात्म परमार्थ है। इसीलिए हमें ऐसा विज्ञान चाहिए, जिस पर अध्यात्म की परत चढ़ी हो। हमें बिजली चाहिए, हमें सुंदर मकान चाहिए, बड़ी-बड़ी गाड़ियाँ चाहिए, विलासिता के सारे सामान चाहिए। विज्ञान ने हमारे लिए यह सब संभव बनाया है। हर बड़ी खोज एक महान उत्पाद को जन्म देती है, जो हमारी जिंदगी पर असर डालती है। यह सब विज्ञान की ही देन है, लेकिन इन सबके लिए हमें एक कीमत चुकानी पड़ती है। किसी बड़ी फैक्टरी का परिणाम भोपाल हादसे के रूप में होता है तो किसी कालजयी परमाणु शक्ति बनने की तमन्ना के बायप्रोडक्ट में चेरनोबिल हादसे से रूबरू भी होना पड़ता है।

विज्ञान की अपनी सीमा है। विज्ञान अगर हमारी जिंदगी पर हावी हो जाए तो प्रकृति का अत्यधिक शोषण होने लगेगा, लेकिन इस सबको अध्यात्म संतुलित करता है। अध्यात्म हमारे स्वार्थ को अंकुश में रखने की प्रेरणा देता है, प्रकृति से प्यार करना सिखाता है। यह हमें मानवीय संवेदना देता है, हमें सभ्य बनाता है। प्रकृति से हमें प्यार तभी होगा, पर्यावरण बचाने की सुध हममें तभी आएगी, जब हम यह मानने लगेंगे कि कण-कण में भगवान का वास होता है।

पर्यावरण को बचाना विज्ञान की मजबूरी है और सभ्यता की जरूरत। इस प्रकार हिग्स बोसोन की खोज से हमें इसमें सहायता मिलेगी। आखिरकार विज्ञान ने भी यह मान लिया है कि हमारी जिंदगी में अध्यात्म की कितनी महत्ता है। विज्ञान से भौतिक जीवन का विकास होता है, परंतु आंतरिक जीवन की परिष्कृति और समृद्धि के लिए अध्यात्म की आवश्यकता है। अत: जीवन के लिए अध्यात्म और विज्ञान, दोनों की जरूरत है। हमें पदार्थ से चेतना की ओर यात्रा की जरूरत है। ❑

एक बार देवर्षि नारद भगवान विष्णु से मिलने के लिए वैकुंठ पहुँचे। भगवान विष्णु ने उनसे पूछा कि वे कहाँ से आ रहे हैं ? उत्तर में देवर्षि नारद ने कहा कि वे धरती का परिभ्रमण करके आ रहे हैं। भगवान विष्णु ने तब उनसे अपने किसी भक्त के विषय में पूछा। देवर्षि नारद ने उन भक्त के विषय में बताया, पर साथ ही भगवान विष्णु से एक प्रश्न भी किया—"आप संपूर्ण सृष्टि के अधिपति हैं और अनेक कार्य आपके पास हैं। तब भी आप एक भक्त के विषय में इतना चिंतित क्यों हैं ?" उत्तर में भगवान विष्णु बोले—

"पृथ्वी तावदतीव विस्तृतमति तोष्टनम् वारिधी
पीतोऽसौ कलशोद्भवेन मुनिना स व्योम्नि खद्योतवत्।
तद् व्याप्तं दनुजाधिपस्य जपिना पादेन चैकेनखं
तं त्वं चेतसि धारयस्यविरतं त्वत्तोऽस्ति नान्योमहान्॥

अर्थात पृथ्वी बहुत विस्तृत है, परंतु समुद्र से घिरी होने के कारण वह भी बड़ी नहीं है। समुद्र को अगस्त्य मुनि पी गए थे, इसलिए वह भी बड़ा नहीं है। अगस्त्य मुनि विस्तृत आकाश में छोटे जुगनू के समान हैं और उस आकाश को वामन ने नाप लिया था और वो वामन भक्त के हृदय में निवास करते हैं। इसीलिए भक्त ही सबसे बड़ा है।"

ग्रामीण भारत एवं आधुनिक भारतीय चिंतक

भारत गाँवप्रधान देश है, जिसकी 70% आबादी गाँवों में बसती है, जो इस समय लगभग नौ लाख गाँवों में फैली हुई है। इसका एक बड़ा हिस्सा कृषि अध्यवसाय से जुड़ा हुआ है। आबादी की विशालता को देखते हुए ग्रामीण क्षेत्र एवं कृषि के योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता, लेकिन आज ग्रामीण जीवन एवं किसानी बदहाली की अवस्था में है, जिस पर समग्र रूप से विचार करने की आवश्यकता है। इसके लिए भारतीय चिंतन परंपरा में समय-समय पर व्यापक विचार होता रहा है, जिन्हें समयानुकूल देश-काल, परिस्थिति के हिसाब से ढालते हुए अपनाया जा सकता है।

आरण्य में पुष्पित-पल्लवित वैदिक संस्कृति मूलत: ग्रामीण संस्कृति थी, जिसमें गाँव स्वयं में स्वतंत्र, आत्मनिर्भर एवं स्वायत्त इकाई थे। अँगरेजों के आगमन से पहले तक काल के थपेड़े खाते हुए भी किसी तरह इसका अस्तित्व बना हुआ था, लेकिन अँगरेजों की दोषपूर्ण नीतियों के साथ इसकी स्वायत्तता भी प्रभावित हुई। 12वीं शताब्दी के अंत तक राष्ट्रीय स्वाभिमान निचले स्तर पर था, जब अँगरेजी शिक्षा का जादू आधुनिक शिक्षा में दीक्षित वर्ग के सर चढ़कर बोलने लगा था।

इसी बीच युगनायक स्वामी विवेकानंद के रूप में राष्ट्र को झकझोरने वाली आँधी आई और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की एक लहर उठी। देश के पुनर्जागरण के लिए उन्होंने नूतन संदेश दिया। उन्होंने कहा—''हमारा देश झोंपड़ियों में बसता है, इनके विकास के बिना राष्ट्र निर्माण की कल्पना नहीं की जा सकती। सबसे पहले इनकी स्थिति में सुधार करना होगा। गरीबी, अशिक्षा और भूख से पीड़ित कृषक, श्रमिक, पिछड़े वर्ग एवं आमजन को पेट भर भोजन देने के साथ शिक्षा देने की व्यवस्था भी करनी होगी। शिक्षा ऐसी हो, जो उनको अपने पैरों पर खड़ा कर सके, उनमें सिंह-सा साहस जगा सके, उनके चरित्र का गठन कर परोपकार का भाव उनमें विकसित कर सके। समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वासों एवं पिछड़ेपन का उपचार शिक्षा ही है।''

स्वामी जी धर्म-अध्यात्म को न केवल बहुत महत्त्व देते थे, बल्कि इसे राजनीतिक एवं सामाजिक सुधार से ऊपर स्थान देते थे। उनके शब्दों में—अध्यात्म भारत का जीवन प्राण है। शिक्षा के साथ एवं जीवन में इसका समावेश करने पर ही संस्कारों का बीजारोपण होगा, समस्याओं का समूल उपचार संभव होगा। स्वामी जी का मत था कि पिछड़ी व निर्धन अशिक्षित जनता को अधिक अवसर देने की आवश्यकता है, जिससे कि उनका खोया स्वाभिमान वापस आ सके और वे शिक्षित, आत्मनिर्भर एवं जाग्रत नागरिक के रूप में समाज तथा राष्ट्रनिर्माण के कार्य में अपना योगदान दे सकें। इसी के साथ महिलाओं के लिए स्वामी जी ने सीता, सावित्री और गार्गी जैसी शिक्षित, सुसंस्कृत एवं जाग्रत नारियों का आदर्श प्रस्तुत किया।

इसी धारा में स्वतंत्रता संग्राम के दौर में महात्मा गांधी की आँधी आई, जिन्होंने राष्ट्रनिर्माण के लिए ग्रामोत्थान की बात कही। गांधी जी के शब्दों में—देश की आत्मा गाँवों में बसती है और गाँवों के विकास एवं उत्थान के बिना राष्ट्र निर्माण की बातें बेमानी ही रहेंगी। उनके अनुसार—ग्रामीण जीवन भारतीय संस्कृति की पुरातन संस्कृति का प्रतीक है; जबकि शहरी जीवन विदेशी शासन की उपज रहा है। ग्रामोत्थान के लिए वे अँगरेजों से पहले की सामाजिक व्यवस्था के हिमायती थे, जब गाँव स्वशासित लोकतांत्रिक इकाई के रूप में आत्मनिर्भर थे तथा पंचायत द्वारा ग्रामीण स्तर का शासन-प्रशासन चालित होता था।

आजादी के बाद देश में अँगरेजों के द्वारा प्रारंभ की गई शासन-व्यवस्था यथावत् चलती रही, जिसमें पंचायत-व्यवस्था सत्ता के रहमोकर्म पर आश्रित हो गई। गांधी जी सत्ता के विकेंद्रीकरण के पक्षधर थे और पंचायत-व्यवस्था की भूमिका को स्वायत्त एवं आत्मनिर्भर देखना चाहते थे, जो स्वतंत्र ढंग से अपने निर्णय ले सके एवं साथ ही शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई आदि की व्यवस्था स्वयं कर सके।

गांधी जी श्रम की गरिमा के प्रबल समर्थक थे। स्वाबलंबी भारत के लिए वे लघु एवं कुटीर उद्योगों को

चलाने पर बल देते रहे। बड़े उद्योगों के वे विरोधी थे, जो उनके अनुसार, कुछ लोगों को ही रोजगार दे सकते हैं; जबकि इनके चलते अधिकांश लोगों के बेरोजगार होने की संभावना थी। साथ ही उन्हें भय था कि इसके कारण आर्थिक शक्ति कुछ लोगों के हाथ में केंद्रित होगी व इससे शोषण को बल मिलेगा। इसके साथ अर्जित संपत्ति पर गांधी जी ट्रस्टीशिप के हिमायती थे। वे निजी संपत्ति के विरोधी नहीं थे, लेकिन लोभ की वृत्ति को प्रश्रय देने के विरोधी थे।

आवश्यकता से अधिक धन का वे जरूरतमंदों एवं निर्धनों के बीच वितरण चाहते थे और अहिंसा एवं नैतिक मूल्यों पर आधारित समता-एकतामूलक व्यवस्था चाहते थे, जिसका स्रोत वे उपनिषद्, गीता जैसे आध्यात्मिक ग्रंथों को मानते थे। सत्ता द्वारा शोषण के विरुद्ध असहयोग एवं सामाजिक अवज्ञा जैसे अहिंसात्मक तौर-तरीकों की वे वकालत किया करते थे। इस तरह गांधी जी की देश के विकास की अवधारणा ग्राम स्वराज्य एवं सर्वोदय के रूप में आम इनसान के उत्थान पर केंद्रित थी, जिसकी आदर्श स्थिति को उन्होंने रामराज्य का नाम दिया।

गांधी जी के कार्य को उनके शिष्य एवं आध्यात्मिक उत्तराधिकारी विनोबा भावे ने आगे बढ़ाया और भूदान आंदोलन के माध्यम से देश के बड़े जमींदारों, धनाढ्य किसानों को अपनी अतिरिक्त जमीन को गरीब एवं भूमिहीन किसानों एवं ग्रामीणों को दान करने के लिए प्रेरित किया। सन् 1951 में तेलंगाना के पोचंपल्ली गाँव से शुरू भूदान आंदोलन के अंतर्गत एक दिन में 2 से 3 हजार एकड़ भूमि प्रतिदिन के हिसाब से दान होती गई।

वे लगभग डेढ़ दशक तक लगातार पैदल गाँव-गाँव प्रव्रज्या करते रहे; जिसमें 40 लाख एकड़ भूमि का आबंटन उन्होंने किया, जिससे लगभग 5 लाख किसान परिवार लाभान्वित हुए। इसके साथ ही विनोबा नारी शक्ति के जागरण तथा गोवध के विरुद्ध आंदोलन को भी धार देते रहे। यह ग्रामोत्थान एवं राष्ट्रनिर्माण की दिशा में अहिंसात्मक क्रांति का अपनी तरह का एक अद्भुत प्रयोग रहा, जिसकी मिसाल को पूरे विश्व ने मुक्त कंठ से सराहा।

ग्रामोत्थान के इस सनातन प्रवाह को परमपूज्य गुरुदेव युगऋषि पं० श्रीराम शर्मा जी ने युगानुकूल नया रूप दिया। आदर्श ग्राम योजना के अंतर्गत स्वच्छ-स्वस्थ, शिक्षित-स्वावलंबी, समरसतापूर्ण, सहयोग व सहकार से भरा, व्यसन एवं कुरीतिमुक्त, आत्मनिर्भर, प्रकृति-पर्यावरण संरक्षित, संस्कारयुक्त ग्राम विकास का दर्शन उन्होंने दिया; जिसको गायत्री परिजनों द्वारा क्षेत्रों में अपने-अपने स्तर पर सप्तक्रांति आंदोलनों के माध्यम से क्रियान्वित किया जा रहा है एवं जो साधना की धुरी पर केंद्रित है। आवश्यकता हर परिजन को इस भागीरथी कार्य को करने में प्राणपण से जुटने की है और अपने स्तर पर क्षेत्रीय स्थिति के अनुरूप इसके कार्यक्रमों को लागू करते हुए राष्ट्र एवं समाज निर्माण के महायज्ञ में अपनी भावभरी आहुति अर्पित करने की है। ❑

बाह्योपचार के लिए कोई मनाही नहीं। वे होते हैं और होते रहने चाहिए, किंतु महत्त्व अंत:उपचार का भी समझा जाना चाहिए। युग-परिवर्तन का वास्तविक तात्पर्य है— अंत:करण में जमी हुई आस्थाओं का उत्कृष्टतावादी पुनर्निधारण। समस्त समस्याओं का समाधान इस एक ही उपाय पर केंद्रित है; क्योंकि गुत्थियों का निर्माण इसी क्षेत्र में विकृतियाँ उत्पन्न होने के कारण हुआ है। खाद्य संकट, ईंधन संकट, स्वास्थ्य संकट, सुरक्षा संकट की तरह आस्था संकट के व्यापक क्षेत्र और प्रभाव को भी समझा जाना चाहिए। युग की समस्याओं के समाधान में इससे कम में काम चलेगा नहीं और इससे अधिक और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

ऊर्जा-प्रसारण का केंद्र होते थे मंदिर

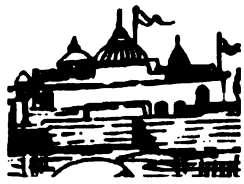

भारत एक ऐसा देश है, जहाँ प्राचीनकाल में मूर्ति निर्माण का एक पूरा विस्तृत तंत्र विकसित था। दूसरी संस्कृतियों ने हमें मूर्ति-पूजा करते देखकर गलत समझ लिया कि हम किसी खिलौने को भगवान मानकर उसकी पूजा करते हैं, परंतु ऐसा नहीं है। भारत के लोगों को इस बात का पूरा एहसास और जानकारी है कि यह हम ही हैं, जो रूप और आकार गढ़ते हैं।

अगर हम इसे आधुनिक विज्ञान के नजरिए से देखें तो आज हम जानते हैं कि हर चीज में एक जैसी ही ऊर्जा होती है, लेकिन दुनिया में हर चीज एक जैसी नहीं है। यह ऊर्जा एक पशु के रूप में भी काम कर सकती है और एक दैवी रूप में भी। जब हम दैवी रूप की बात करते हैं तो हमें हमारे बारे में एक अस्तित्व के तौर पर बात नहीं करनी चाहिए। अगर हम अपने शरीर के पूरे तंत्र को एक खास तरीके से पहचान लेते हैं तो यह भौतिक शरीर भी एक दैवी तत्त्व में रूपांतरित हो सकता है।

पूर्णिमा और अमावस्या के बीच की रातें एकदूसरे से काफी अलग होती हैं। चूँकि आजकल हम लोग बिजली की रोशनी में रहने के इतने अधिक आदी हो गए हैं कि हमें इन रातों की भिन्नता का एहसास ही नहीं हो पाता। अगर हम खेतों में या जंगल में ऐसी जगह रह रहे होते हैं, जहाँ बिजली न हो तो वहाँ शायद हमको इन रातों के अंतर का असर पता चलता। तब हम समझ पाते कि हर रात अलग होती है, क्योंकि हर रात एक अलग समय पर चंद्रमा निकलता है और हर रात उसका आकार भी अलग-अलग होता है। हालाँकि चंद्रमा वही है, हर रात उसका अस्तित्व बदलता नहीं है, बल्कि वही एक चंद्रमा अलग-अलग समय पर अलग-अलग प्रभाव डालता है।

इसी तरह से अगर हम अपने शरीर के ऊर्जा तंत्र में जरा-सा बदलाव कर दें तो हम अपने आप में दिव्य अस्तित्व बन सकते हैं। योग की प्रणाली भी इसी सोच से प्रेरित है— धीरे-धीरे अगर हम इस ओर समुचित ध्यान देंगे और साधना करेंगे तो हम पाएँगे कि यह शरीर सिर्फ अपनी सुरक्षा या संरक्षण और प्रजनन के लिए ही नहीं है, बल्कि इसमें बहुत बड़ा रूपांतरण आया जाता है।

यह सिर्फ एक भौतिक शरीर भर ही नहीं है, हालाँकि इसमें भौतिकता होगी, जैविकता होगी, लेकिन तब इसे सिर्फ भौतिक तक सीमित रहने की जरूरत नहीं रहेगी। ऐसी स्थिति में यह बिलकुल अलग धरातल पर पहुँचकर काम करेगा तब इसकी मौजूदगी बहुत अलग हो उठेगी।

इस तरह अपने यहाँ मूर्ति निर्माण के पीछे एक पूरा विज्ञान हुआ करता था। जहाँ एक खास तरह की आकृतियाँ एक खास तरह के पदार्थ या तत्त्वों से मिलाकर बनाई जाती थीं और उन्हें कुछ खास तरीके से ऊर्जावान किया जाता था। अलग-अलग मूर्तियाँ या प्रतिमाएँ अलग-अलग तरीके से बनती हैं और उनमें पूरी तरह से अलग संभावनाएँ जगाने के लिए उनमें कुछ खास जगहों पर चक्रों को स्थापित किया जाता था। मूर्ति निर्माण अपने आप में एक उच्चतर विज्ञान था। इसके द्वारा हम ऊर्जा को एक विशेष तरीके से रूपांतरित करते थे।

भारत में मंदिरों के निर्माण के पीछे भी एक गहन विज्ञान था और ये मंदिर मात्र पूजा के लिए नहीं बनाए गए थे। जब हम मंदिर की बात करते हैं तो हमारा आशय भारत के पुरातन अर्थात प्राचीन मंदिरों से होता है। आजकल के मंदिर तो किसी शॉपिंग कॉम्प्लेक्स की तरह बने हुए हैं। अगर मंदिर के मूलभूत पक्षों को मसलन प्रतिमाओं का आकार और आकृति, प्रतिमाओं द्वारा धारण की गई मुद्रा, परिक्रमा, गर्भगृह और प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित करने के लिए किए गए मंत्रोच्चारण आदि में समुचित समन्वय का ध्यान रखा जाए तो एक शक्तिशाली ऊर्जा तंत्र तैयार हो जाता है।

भारतीय परंपरा में कोई हमसे नहीं कहता था कि अगर हम मंदिर जा रहे हैं तो हमको पूजा करनी ही होगी, पैसे चढ़ाने ही होंगे या कोई मन्नत माँगनी ही होगी। ये सारी चीजें ऐसी हैं, जो बहुत बाद में शुरू हुई हैं। मंदिर पहुँचने मात्र से हमारे और मंदिर की ऊर्जा तरंगों के बीच आदान-

प्रदान हो जाता था। हम सकारात्मक ऊर्जा से आप्लावित हो उठते थे।

पारंपरिक रूप से हमको बताया जाता है कि हम मंदिर जाएँ तो वहाँ कुछ देर के लिए बैठें, तब वापस आएँ; क्योंकि वहाँ विशेष रूप से एक ऊर्जा क्षेत्र तैयार किया गया था, लेकिन अब हम मंदिर जाते हैं और मंदिर के फर्श पर पल भर के लिए अपना आसन टिकाते हैं और चल देते हैं। सिर्फ ऐसा करना ही हमारे मंदिर जाने के उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकता है। मंदिर जाने का यह तरीका नहीं है। सुबह अपने काम-काज के लिए बाहर निकलने से पहले हमें कुछ देर के लिए मंदिर जाना चाहिए। यह जीवन को सकारात्मक स्पंदन से भरने का एक तरीका है, ताकि जब हम घर से बाहर निकलें तो एक सकारात्मक नजरिए के साथ हों। पुराने जमाने में मंदिर भगवान के स्थान या प्रार्थनास्थल के रूप में तो प्रयुक्त होते ही थे, इसके अलावा इन्हें एक ऊर्जास्थल के रूप में भी तैयार किया गया था, जहाँ कोई भी जाकर सकारात्मक ऊर्जा का इस्तेमाल कर सकता था।

मंदिर एवं देवस्थल की संरचना ही ऐसी होती है कि जहाँ पर सतत सकारात्मक ऊर्जा एवं चेतना का संचरण होता रहता है। वहाँ पर पहुँचते ही इस चैतन्य ऊर्जा का प्रभाव पड़ने लगता है और हमारा मन प्रसन्न तथा भाव पुलकित हो उठते हैं। अत: हमें इस प्रभाव को ग्रहण करने मंदिर जाना चाहिए। ❑

सुंदरवन में कुटिलराज नामक एक गीदड़ रहा करता था। नाम के अनुसार, वह अपनी कुटिलता के लिए कुख्यात था। एक दिन वह शिकारियों द्वारा खोदे गए गड्ढे में गिर गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी वह बाहर न निकल सका। थक-हारकर वह वहीं बैठ गया था कि उसे एक बकरी की आवाज सुनाई पड़ी, जिसे सुनते ही उसने तत्काल एक योजना बनाई। वह बकरी को पुकारकर बोला—''बहन! जरा देखो, यहाँ कितनी हरी-हरी घास और मीठा पानी है। यहाँ आओ और इस हरियाली का जी भर कर लाभ उठाओ।''

कुटिलराज गीदड़ की बातें सुनकर वह सीधी बकरी गड्ढे में कूद गई। उसके कूदते ही वह गीदड़ उसकी पीठ पर चढ़कर बाहर कूद गया और फिर बकरी को संबोधित करते हुए बोला—''तू तो मूर्ख-की-मूर्ख ही ठहरी। खुद ही गड्ढे में मरने आ गई।''

बकरी उसी निश्चिंतता के साथ बोली—''भाई गीदड़! मैं तो परोपकार करते हुए मर जाने को ही धर्म समझती हूँ। शिकारियों के लिए तो मैं किसी काम की नहीं, मुझे तो वे शायद वैसे ही निकाल लें, परंतु इस संवेदनहीनता के साथ तुम किसको अपना बना पाओगे, यह तुम्हें जरूर सोचना चाहिए।'' बकरी की बातें गीदड़ के हृदय में चुभ गईं और उसने अपने जीवन की दिशा बदल ली।

चेतना की शिखर यात्रा – 226

गायत्री योग का प्रवर्तन

विगत अंक में आपने पढ़ा कि पूज्यवर के कृपापात्र साधक को उन्हीं समर्थ सत्ता की अनुकंपा से सिद्धाश्रम की यात्रा करने व वहाँ उपस्थित महर्षि विश्वामित्र एवं अन्य ऋषिगणों के दर्शनलाभ का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सनातन धर्म के मूल्यों की समाज में प्रतिष्ठापना के संदर्भ में आयोजित विमर्श में महर्षि ने पूज्यवर के समक्ष आदिशक्ति गायत्री की संध्योपासना की व्यवस्था को सार्वजनीन बनाए जाने की बात कही। वर्षों से चली आ रही प्रतिवर्तित उपासना-विधि पर आपत्ति जताते हुए महर्षि ने कहा कि सामयिक परिस्थितियों में जटिल एवं व्यस्त जीवनचर्या में गायत्री की सरल व संक्षिप्त उपासना-विधि ही जनसामान्य के लिए ग्राह्य एवं हितकारी सिद्ध होगी। आइए पढ़ते हैं इससे आगे का विवरण ...

महर्षि विश्वामित्र ने ऐसी चौंसठ विधियाँ गिनाई थीं। सिद्धाश्रम में विद्यमान अन्य ऋषि-महर्षियों की सम्मति का भी उल्लेख आया। वे भी सरल और सबके लिए संभव व्यावहारिक विधान के पक्ष में थे।

लगभग छत्तीस वर्ष पहले गुरुदेव ने 'ब्रह्म संध्या' के नाम से दस मिनट में ही संपन्न हो जाने वाली विधि का प्रवर्तन किया था। साधक ने गुरुदेव के प्रवचनों और निजी चर्चाओं में इस विधान के बारे में सुना था। घंटों तक चलने वाली महापुरश्चरण साधनाओं के विधि-विधान पर कोई प्रश्नचिह्न लगाए बिना ही गुरुदेव ने आसान विधियों का भी उपदेश किया। इनमें चौबीस लाख जप से संपन्न होने वाले महापुरश्चरण के अलावा चालीस दिन में संपन्न होने वाली साधना और नौ दिन का पुरश्चरण चैत्र और आश्विन मास के नवरात्रों में किया जाने लगा था। सामान्य दिनों में भी उपासक अपनी स्थिति और सुविधा के अनुसार यह अनुष्ठान करते थे। नवरात्रों में तो यह विधि आमतौर पर अपनाई जाने लगी थी। सिद्धाश्रम में निवास करने वाली आर्ष मनीषी स्तर की दिव्य सत्ताओं का मानना था कि संध्यावंदन का पारंपरिक विधान लगभग लुप्त हो गया है। उसे जानने वाले गिने-चुने लोग ही हैं। वे उस विधि को अपनाए रहें, लेकिन सामान्य जनों के लिए गुरुदेव ने एक अन्य विधि प्रस्तुत की। उसे गायत्री योग का नाम दिया जा सकता है। यों वह संध्यावंदन ही है, सूर्योदय और सूर्यास्त के समय दिवस और रात्रि के मिलन काल में संपन्न होने वाली इस विधि में गायत्री की अभ्यर्थना के साथ पूजा और जप-ध्यान का समावेश भी रहे।

उन दिव्य सत्ताओं ने युग-साधना के लिए जो आधार निश्चित किए थे, उन्हें पूरा करते हुए गुरुदेव ने महर्षि विश्वामित्र के सामने गायत्री योग की संपूर्ण रूपरेखा रख दी। ऋषिप्रवर का विश्लेषण था कि संध्यावंदन में मुख्य कृत्य पाँच ही हैं। पवित्रीकरण, प्राणायाम, पापों का नाश (अघमर्षण), सूर्यार्घ्यदान और गायत्री का जप-ध्यान। गुरुदेव ने गायत्री योग की जो रूपरेखा तैयार की थी, उसमें पाँचों कृत्य संपन्न होते थे। निश्चित हुआ कि आगामी वसंत पंचमी से इस विधान को सार्वजनिक किया जाए।

इस निर्धारण के बाद गुरुदेव ने अपने शिष्य-साधक को साथ लेकर शांतिकुंज के लिए प्रस्थान किया। साधक ने अनुभव किया कि गुरुदेव के साथ उनके साधना कक्ष से जुड़े जिस स्थान से यात्रा आरंभ की थी, वहीं पहुँचकर समापन हुआ है। वहाँ जो कायकलेवर छूटा था, वह ज्यों-का-त्यों पद्मासन लगाए मौजूद था। प्रकाश की एक रेखा के भीतर उस कलेवर में प्रवेश हो रहा है और वह कलेवर उठ खड़ा हुआ है।

विधान

योग का आरंभ सुबह आँख खुलने के साथ शुरू किया जाए। उसमें परमात्मा के स्मरण के साथ आज के दिन को पूरा जीवन मानकर जीने की योजना बनाई जाती है। दिन भर का,

दिन के प्रत्येक पल का श्रेष्ठतम उपयोग का संकल्प करते हुए दिनचर्या तय की जाए। उसे निभाने और रात को सोते समय उसकी समीक्षा करने को गायत्री योग का साधना पक्ष माना गया है। समीक्षा में दिन भर हुई गलतियों और दिनचर्या में आए विचलन की मीमांसा करते हुए उन्हें दोबारा नहीं होने देने का निश्चय हो। जो भूल हो गई, उसे यों ही नहीं भूलकर उसके प्रायश्चित का भी विधान है। गायत्री योग के साधक इस साधना पक्ष को 'हर दिन नया जन्म और हर रात नई मौत' के मंत्र से समझें।

सुबह-शाम के लिए उपासना पक्ष भी है। उस पक्ष में आत्मशोधन, देवपूजन, जप, ध्यान और विसर्जन के नाम से पाँच अंग हैं। पाँचों अंग मिलकर संध्या और आराधना की आवश्यकता पूरी करते हैं। स्नानादि से निवृत्त होकर सुबह-शाम इस उपासना के लिए बैठें। सुबह के समय बैठते हुए मुँह पूर्व की ओर तथा शाम के समय पश्चिम की ओर हो। समय सूर्योदय से दो घंटे पहले और सूर्यास्त के बाद एक घंटे के बीच में हो। सुबह सूर्योदय के एक घंटा बाद तक भी उपासना की जा सकती है। आराधना के लिए बैठते समय पास में जल से भरा एक छोटा कलश, आचमनी, एक तश्तरी में चुटकी भर चावल, धूप या अगरबत्ती, दीपक और नैवेद्य के रूप में मिसरी या इलायची दाने रखे जाएँ। सामने चौकी पर गायत्री का चित्र स्थापित हो। जो लोग निराकार के प्रति श्रद्धा रखते हैं, वे सूर्य या गायत्री मंत्र को भी प्रतीक मान सकते हैं।

आत्मशोधन-सुखासन से पालथी मारकर बैठें। गायत्री मंत्र पढ़ते हुए आचमनी से बाएँ हाथ की अंजलि में जल डालें और दाएँ हाथ की उँगलियों से शरीर पर जल छिड़कें (पवित्रीकरण), फिर मंत्र पढ़कर आचमनी से तीन बार मुँह में जल डालें (आचमन), मंत्र पढ़कर शिखा बाँधें या उस स्थान का स्पर्श करें (शिखावंदन), गायत्री मंत्र पढ़कर तीन बार प्राणायाम करें (प्राणायाम), फिर बाएँ हाथ की अंजलि में जल लेकर दाहिने हाथ की उँगलियों को उसमें भिगोकर क्रम से सिर के बीच, मूर्धास्थान, दोनों आँख, दोनों कान, मुख, कंठ, हृदय, नाभि, भुजा और पैरों को लगाएँ (न्यास)।

इन क्रियाओं को करते हुए पवित्रीकरण के समय शुद्धता की, आचमन के समय आंतरिक निर्मलता की, शिखावंदन के समय संकल्प की, प्राणायाम के समय प्राण की और न्यास के समय शरीर के अंग-अंग में दिव्य शक्ति के अवतरण और धारण करने की भावना की जाती है। प्रत्येक क्रिया के अलग-अलग मंत्र भी हैं। जिन्हें उनमें रुचि हो वे संबंधित मंत्रों का उच्चारण करें। जिन्हें मंत्र याद रखने में कठिनाई हो वे और दूसरे लोग भी गायत्री मंत्र का उपयोग कर सकते हैं।

देवपूजन में सामने रखे गायत्री के चित्र या सूर्य देवता अथवा निराकार परमेश्वर की उपस्थिति को प्रणाम करें। उनके आगमन की भावना करते हुए उसी क्रम से जल और फिर अक्षत चढ़ाएँ। धूप या अगरबत्ती और दीपक जलाकर आदिशक्ति का अभिवादन करें। मिसरी, इलायची, चिरौंजी से नैवेद्य अर्पित किया जाए। पूजन के समय अपने भीतर इन पाँचों पदार्थों के गुण विकसित होने, विनय, सामंजस्य, प्रसन्नता, पुण्य-परमार्थ और माधुर्य आदि गुण बढ़ने की भावना की जाए।

जप—गायत्री मंत्र का कम-से-कम तीन मालाओं का जप किया जाए। मंत्र प्रायः सभी जानते हैं। उसका जप करते

तीर्थानां हृदयं तीर्थं शुचीनां हृदयं शुचिः ॥

सब तीर्थों में अंतरात्मा ही परम तीर्थ है और सब पवित्रताओं में हृदय की पवित्रता ही प्रमुख है।

हुए ईश्वरीय तेज को अपने भीतर अवतरित होने की भावना की जाए। माला का अभ्यास नहीं हो तो घड़ी देखकर पंद्रह मिनट तक जप चले। जप मौन रह कर करें। ओंठ, कंठ और मुँह हिलते रहें। जप की ध्वनि इतनी मंद रहे कि किसी को सुनाई नहीं दे। ध्यान-जप के समय गायत्री के चित्र को देखते हुए उपास्य आराध्य की साक्षात् उपस्थिति अनुभव करें। जप के साथ यह अनुभूति बराबर होती रहनी चाहिए।

अर्घ्यदान—विसर्जन-जप-ध्यान पूरा होने पर पूजा वेदी पर रखे छोटे कलश का जल सूर्य के सामने अर्घ्य के रूप में चढ़ाना चाहिए। अर्घ्य चढ़ाते हुए मंत्र पढ़ना चाहिए। जल को आत्मसत्ता का प्रतीक माना जाता है और सूर्य को विराट ब्रह्म विश्व का। अपनी सत्ता को समष्टि के लिए अर्पित करने का भाव अर्घ्य में है। अर्घ्य के बाद आह्वान की गई देवशक्तियों को अपने स्थान पर लौट जाने की भावना की जाती है। गायत्री योग के साधकों को सप्ताह में एक दिन एकाशन, अस्वाद व्रत और दिन में दो घंटे का मौन रखने के लिए भी कहा गया है। (क्रमशः)

कर्मफल सिद्धांत एवं पुनर्जन्म

जीवन अनंत रहस्यों से भरा-पूरा है, लेकिन मृत्यु उससे भी बड़ी पहेली है। मृत्यु को लेकर विज्ञान और दर्शन में अनेक प्रश्न हैं—क्या मृत्यु के बाद मनुष्य का अस्तित्व समाप्त हो जाता है या मृत्यु केवल शरीर पर ही घटित होती है? और प्राण या आत्मतत्त्व मृत्यु के साथ ही क्या मुक्त हो जाता है? प्रश्न है कि यह आत्मतत्त्व कहाँ चला जाता है? अगर कहीं जाता है तो कहीं से आता भी होगा? इससे दूसरा और मौलिक प्रश्न उठता है कि क्या आत्मा सदा से है या आत्मा का भी जन्म होता है? यदि आत्मा का जन्म होता है तो इसका भी अवसान होता है क्या? क्या मनुष्य की आत्मा या प्राण बार-बार जन्म लेते हैं? पुनर्जन्म क्या है?

ऐसे अनेक प्रश्न जिज्ञासु चित्त को मथते हैं। विज्ञान के पास इन प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं। दुनिया के तमाम देशों में मृत्यु के बाद के जीवन पर सोच-विचार हुआ था, लेकिन विज्ञान के पास इन प्रश्नों के उत्तर नहीं थे। भारतीय ऋषियों ने प्रकृति के रहस्यों के साथ ही मनुष्य के अंतर्जगत पर भी शोधकार्य किए थे। अत: भारत की संस्कृति ने आत्मा को अमर माना और शरीर को नाशवान।

यह बहस पुरानी है। विश्व स्तर पर इसका विज्ञानसम्मत निर्णायक समाधान होना शेष है, लेकिन भारत में वैदिककाल से ही आत्मा का अमरत्व और देहांतरण—तर्क और अनुभूति का विषय रहे हैं। कठोपनिषद् प्राचीन उपनिषद् है। यहाँ यम और नचिकेता का प्रश्नोत्तर है। नचिकेता ने अग्नि रहस्य पूछा और यम का उत्तर मिला। वह संतुष्ट हुआ। अंतिम प्रश्न चुनौतीपूर्ण था—मृत मनुष्यों के बारे में संशय है अर्थात कुछ लोग कहते हैं कि मृत्यु के बाद यह आत्मा शेष रहती है और कुछ लोग कहते हैं कि नहीं रहती। आप सही बात का उपदेश दें।

भारत का उत्तर वैदिककाल रोमांचकारी है। तब नचिकेता जैसे बालक भी मृत्यु संबंधी रहस्यों के प्रति जिज्ञासु हुआ करते थे। यम ने कहा कि प्राचीनकाल से ही इस विषय पर संदेह रहा है। यह विषय अति सूक्ष्म है—**हि एष: धर्म अणु:**। तुम कोई दूसरा वर माँगो। उपनिषद् के रचनाकाल के पहले से ही यह विषय भारतीयों की जिज्ञासा का विषय था। यम के उत्तर में आत्मा की अमरता का उल्लेख है कि यह आत्मा न जन्मती है, न मरती है। यह किसी का कारण नहीं है और न किसी का कार्य है। क्योंकि यह शाश्वत है व अजन्मा है।

अथर्ववेद में इस अजन्मा आत्मा को अग्नि और ज्योति-प्रकाश बताया गया है—**अजो अग्निरजमु ज्योति:**। कहते हैं—हे अज! आप अजन्मा और स्वर्गरूप हैं—**अजो ३ स्यज स्वर्गोऽसि**। पुनर्जन्म का भारतीय विचार इस संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण चिंतन कहा जा सकता है। पुनर्जन्म से जुड़ी तमाम घटनाएँ विश्व स्तर पर प्राय: घटित होती रहती हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा कि योग का यह ज्ञान मैंने विवस्वान को बताया था। उन्होंने मनु को और मनु ने इक्ष्वाकु को बताया था। अर्जुन ने प्रतिप्रश्न किया आपका जन्म बाद का है और विवस्वान का बहुत प्राचीन है। श्रीकृष्ण ने कहा—"अर्जुन! मेरे-तेरे बहुत जन्म हो चुके हैं। मैं उन्हें जानता हूँ, परंतु तू नहीं जानता है।"

पुनर्जन्म भारतीय अनुभूति है, लेकिन ईसा ने भी श्रीकृष्ण की ही तर्ज पर कहा था—"जब अब्राहम हुआ था मैं उसके भी पहले था।" जैसे कृष्ण ने स्वयं को पूर्व हुए लोगों के भी पहले विद्यमान बताया, वैसे ही ईसा ने स्वयं को पूर्व हुए अब्राहम के भी पहले विद्यमान बताया। श्रीकृष्ण ने ज्ञान-संन्यास का मर्म समझाते हुए अध्याय पाँच में कहा, अपनी संपूर्ण चेतना को परम सत्ता की ओर लगाने वाले वहाँ पहुँचते हैं; जहाँ से यहाँ लौटना नहीं होता। ऋग्वेद में ऐसे लोक का वर्णन मिलता है—**यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्**। जहाँ सारी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं, आप हमें वहाँ अमरत्व दें। फिर वहाँ की विशेषता का वर्णन और भी रोमांचक है—**यत्रानन्दाश्च मोदाश्च, मुद: प्रमुद आसते**। जहाँ आनंद है, मोद है, प्रमोद है, आमोद है, वहाँ आप मुझे अमरत्व दें।

वैदिक साहित्य पुनर्जन्म की मान्यता से समृद्ध है। ऋग्वेद के ऋषि वामदेव कहते हैं कि—**अहं मनुरभवं**

सूर्यश्चाऽहं, कक्षीवाँ। मैं मनु हुआ, मैं सूर्य हुआ, मैं ही कुक्षीवान ऋषि हूँ, मैं ही कुत्स हूँ और मैं ही उशना कवि हूँ। मुझे ठीक से देखो—**पश्यता मा**। ऋग्वेद में स्वतंत्र विवेक और गहन अनुभूति है। वामदेव कहते हैं—"मैंने गर्भ (ज्ञान गर्भ) में रहकर इंद्रादि सभी देवताओं के जन्म का रहस्य जाना है। जन्म-प्रक्रिया रहस्यपूर्ण है।" ऋग्वेद में कहते हैं कि मरणशील शरीरों के साथ जुड़ा जीव अविनाशी है।

वैदिक चिंतन के अनुसार मृत्यु के बाद यह जीव अपनी धारणा शक्ति से संपन्न रहता है और निर्बाध विचरण करता है। यहाँ मृत्यु के बाद भी निर्बाध विचरण की स्थापना ध्यान देने योग्य है। ऋग्वेद में कहते हैं कि अमर्त्य जीव मरणधर्मा शरीर से मिलते हुए विभिन्न योनियों में जाता है। अधिकांश लोग शरीर को ही जानते हैं, पर दूसरे (जीव) को नहीं जानते।

ऋग्वेद के एक देवता सर्वव्यापी अदिति हैं, वे अंतरिक्ष हैं, आकाश हैं, पृथ्वी हैं, भूत हैं, भविष्य हैं। अदिति ही मृत माता-पिता के दर्शन कराने में सक्षम हैं। ऋषि कहते हैं हम किस देव का स्मरण करें, जो हमें अदिति से मिलवाए, जिससे हम अपने मृत माता-पिता को देख सकें।

उत्तर है कि हम अग्नि का स्मरण करें। वे हमें अदिति से मिलवाएँगे, अदिति के माध्यम से हम माता-पिता को देख सकेंगे। मृत माता-पिता से मिलवाने की अनुभूति ध्यान देने योग्य है; क्योंकि जीवन, मृत्यु के बाद भी प्रवाहमान रहता है।

ऋग्वेद में वर्णित देवताओं में एक देवता यम हैं, जो कि पुण्यवानों को सुखद धाम ले जाते हैं। कहते हैं कि जिस मार्ग से पूर्वज गए हैं; उसी मार्ग से सभी मनुष्य स्वकर्मानुसार जाएँगे। कहते हैं कि हे पिता! पुण्यकर्मों के कारण पितरों के साथ उच्चलोक में रहें। पापकर्मों के क्षीण हो जाने के बाद पुनः शरीर धारण करें—**स्व गच्छस्व तन्वा सुवर्चा**।

उक्त वैदिक ऋचा में मृत पिता के पुनर्जन्म की कामना है। अथर्ववेद के ऋषि कहते हैं—वह पहले था, वही गर्भ में आता है; वही पिता, वही माता, वही पुत्र होता है। वह नए जन्म लेता है। अथर्ववेद भी ऐसी व्याख्याओं से परिपूर्ण है।

पुनर्जन्म का विचार मिस्र में भी था। अलेक्जेन्ड्रिया के यहूदियों में भी था। कार्क हेकेल कहते हैं कि मुझे निश्चय हो चुका कि जितनी अधिक गंभीरता से हम मिस्री धर्म का अध्ययन करते हैं, उतना ही अधिक स्पष्ट हमें यह दिखता है कि लोकप्रचलित मिस्री धर्म के लिए आत्मा की देहांतर प्राप्ति का सिद्धांत बिलकुल अज्ञात था और जिस किसी गुह्य समाज में वह मिलता है, वह ओसाइरिस उपदेशों में अंतर्निहित न होकर हिंदू उद्गम से प्राप्त हुआ है।

इजराईल के यहूदी लोगों में भी ऐसा ही विचार है। यहूदियों को यह विचार मिस्र से मिला और मिस्रियों को भारत से। यूनानी चिंतन की शुरुआत (थेल्स ई० पूर्व 600) में पुनर्जन्म जैसा विचार नहीं था। प्रथम यूनानी पाइथागोरस यूनान देशवासियों को पुनर्जन्म का सिद्धांत सिखाया। अपूलियस के अनुसार पाइथागोरस भारत आए थे।

बुद्ध दर्शन में भी पुनर्जन्म की मान्यता है। कहते हैं कि भिक्षुओं को चार सत्यों का बोध न होने से ही मेरा, तुम्हारा संसार में बार-बार जन्म ग्रहण करना हुआ है। वे चार बातें हैं—आर्य शील, आर्य समाधि, आर्य प्रज्ञा और आर्य विमुक्ति। बुद्ध के चार सत्य आर्य सत्य हैं। बुद्धदर्शन में पुनर्जन्म का कारण अज्ञान है, उपनिषद् दर्शन में अविद्या है। पुनर्जन्म दोनों में है। अविद्या और विद्या का मूलस्रोत उपनिषद् हैं। बुद्ध को इसकी अनुभूति है।

उन्होंने शिष्य आनंद को बताया—आनंद! क्या जरा और मृत्यु सकारण हैं? कहना चाहिए—हाँ हैं। किस कारण से हैं? कहना चाहिए—'भव' (आवागमन) के कारण; तब भव किस कारण है? कहना चाहिए—उपादान (आसक्ति) के कारण। तो उपादान क्यों है? उत्तर है कि तृष्णा के कारण। यहाँ मुख्य बात तृष्णा है। तृष्णा-शून्यता ही निर्वाण है। बौद्ध प्रचारकों का कार्यक्षेत्र एलेक्जेन्ड्रिया व एशिया माइनर रहा है। पुनर्जन्म का भारतीय विचार विभिन्न स्रोतों से विश्वव्यापी हुआ।

भारतीय संस्कृति में पुनर्जन्म कर्मफल सिद्धांत का परिणाम है। कर्मानुसार जीव विभिन्न योनियों को प्राप्त करता है। श्रेष्ठ कर्म करके जीव मनुष्य, देवता, ऋषि आदि बनता है और निकृष्ट कर्म के द्वारा वह मानवेतर योनि को प्राप्त करता है। इसलिए सदा सत्कर्म करके जीवन को उत्कृष्ट बनाना चाहिए, ताकि हमारे सभी जन्म शुभ परिणाम वाले हों। ❑

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार– 147

प्राचीन भारत में शल्य तंत्र

भारतीय चिकित्सा विज्ञान के सूत्र-सिद्धांतों का वेदों में व्यापक और विस्तृत स्वरूप समाहित है। आवश्यकता है इनका चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से गहन अवगाहन एवं अन्वेषण करने की। देव संस्कृति विश्वविद्यालय में भारतीय चिकित्सा पद्धतियों को लेकर प्रारंभ से ही सजगतापूर्वक वैज्ञानिक रीति से शोध-अनुसंधान एवं शिक्षण-प्रशिक्षण के कार्य संचालित किए जा रहे हैं। इसी क्रम में आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के विभिन्न पहलुओं को लेकर यहाँ महत्त्वपूर्ण और उपयोगी शोधकार्य पूर्व में किए गए हैं एवं आज भी किए जा रहे हैं।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का अपना एक महत्त्व है, परंतु रोगों के सार्थक और स्थायी समाधान की दृष्टि से इसके कई घातक दुष्परिणामों से भी सभी परिचित हैं। साथ ही सुलभता और आर्थिक रूप से भी सभी तक अत्याधुनिक चिकित्सा सुविधा की पहुँच अभी तक संभव नहीं हो पाई है। ऐसे में ऋषिप्रणीत सूत्रों पर आधृत भारतीय चिकित्सा विज्ञान समुचित विकल्प के रूप में हमारे समक्ष मौजूद है। इसकी व्यापकता, सूक्ष्मता और विशिष्ट तकनीकों को बाहर लाकर जनोपयोगी बनाना समय की एक महती आवश्यकता है।

इसी आवश्यकता की पूर्ति के उद्देश्य से देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्राच्य अध्ययन विभाग में आयुर्वेद विषय के अंतर्गत शल्य चिकित्सा के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है। यह शोधकार्य सन् 2017 में शोधार्थी डॉ0 अजय कुमार गुप्ता द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ0 प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण में डॉ0 वंदना श्रीवास्तव के निर्देशन एवं डॉ0 मनोज प्रताप सिंह के सहनिर्देशन में पूरा किया गया है। इस शोध का विषय है—**'एक्सप्लोरेटरी एनेलिसिस ऑफ शल्य तंत्र इन ऐन्शेन्ट इण्डिया' (विद् स्पेशल रेफेरेन्स टू वेदास)** अर्थात वेदों के विशेष संदर्भ में प्राचीन भारत के शल्य तंत्र का अन्वेषणात्मक विश्लेषण। अध्ययन की सुगमता एवं स्पष्ट विवेचना को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी द्वारा अपने शोधकार्य को कुल सात अध्यायों में वर्गीकृत कर प्रस्तुत किया गया है।

प्रारंभ में प्रस्तावना के अंतर्गत विषय परिचय एवं शोध विषय के महत्त्व, उपयोगिता और उद्देश्य को प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम अध्याय है—वेदों में आयुर्वेद के आधारभूत सिद्धांत। इसके अंतर्गत छह प्रमुख उपबिंदुओं में आयुर्वेद की वैदिक अवधारणाओं की विवेचना की गई है। ये उपबिंदु हैं—पंचमहाभूत, त्रिदोष, धातु, मल, स्रोत और अग्नि।

(i) **पंचमहाभूत**—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। आयुर्वेद विज्ञान के अनुसार मानव शरीर का निर्माण इन्हीं पंचमहाभूतों से होता है। अत: अच्छे स्वास्थ्य के लिए शरीर में इनका संतुलन आवश्यक है।

(ii) **त्रिदोष**—वात, पित्त और कफ—इन तीनों को शरीर उत्पत्ति का कारण कहा गया है। समस्त शरीर का क्रियाविज्ञान का सुचारु संचालन त्रिदोषों के संतुलन पर निर्भर करता है। इनका शरीर में असंतुलन ही रोगों का कारण बनता है।

(iii) **धातुएँ**—हमारे जैविक शरीर की हड्डी, कोशिकाओं, ऊतकों व अन्य संरचनाओं में सप्तधातुओं को मूल आधार माना गया है। ये हैं—रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र। इन धातुओं का पोषण और संतुलन से आरोग्य का लक्ष्य प्राप्त होता है।

(iv) **मल**—स्वेद (पसीना) मल, मूत्र आदि। शरीर के जैविकीय संतुलन में तथा विषाक्त द्रव्यों के निष्कासन में मुख्य भूमिका निभाने वाली संरचना को मल, सिद्धांत के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है।

(v) **स्रोत**—इसके अंतर्गत शिरा और धमनियों की व्याख्या की गई है। शरीरांगों के विभिन्न आकार-प्रकार और संचालन में इन्हीं की मुख्य भूमिका होती है।

(vi) **अग्नि**—जीवित शरीर में अग्नि ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। आयुर्वेद के सिद्धांत में तीन तरह की अग्नि का

उल्लेख है—पाचाग्नि, भूताग्नि और धात्वाग्नि। ये शरीरस्थ अग्नियाँ ही दोष, धातु और मल में संतुलन बनाए रखने का कार्य करती हैं।

द्वितीय अध्याय है—वेदों में संक्रमण और विसंक्रमण (संक्रमण की रोक-थाम)। इसके अंतर्गत बैक्टिीरिया, वायरस आदि के कारण संक्रमण के रोग और इनके आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से रोक-थाम के उपयोग की विवेचना है। आयुर्वेद चिकित्सा में संक्रमण का मूल कारण कृमि हैं। आयुर्वेद ग्रंथों में अनेक तरह की कृमियों का उल्लेख है—इन्हीं को आलंकारिक भाषा में राक्षस, पिशाच, असुर आदि कहा गया है। संक्रमण के उपचार में आयुर्वेदिक औषधियों, सूर्य की किरणों और अग्नि तत्त्व का विवेचन किया गया है।

तृतीय अध्याय है—वेदों में शल्य चिकित्सा अवस्था। इसके अंतर्गत फोड़ा, घाव और अल्सर, रक्तगुल्म की दरदनाक स्थिति, अंगभंग (फ्रेक्चर), मूत्र संबंधी रोग और लिम्फ (लसिका) नोड्स संबंधी रोगों का आयुर्वेदिक सिद्धांतों के अनुसार शल्य चिकित्सा विज्ञान का विस्तृत विवेचन किया गया है। उक्त व्याधियों के संबंध में सुश्रुत संहिता में विस्तार से इसके कारणों, लक्षणों और उपचार संबंधी सिद्धांतों का उल्लेख है। शोधार्थी ने उक्त रोगों की चिकित्सा-प्रक्रियाओं का विवेचन शास्त्रीय सूत्रों के परिप्रेक्ष्य में करने के साथ ही इनके प्रचलित नाम और आधुनिक चिकित्सा क्षेत्र में प्रयोग होने वाले नामों का भी उल्लेख किया है।

चतुर्थ अध्याय है—वेदों में उपचारात्मक अवधारणा। उपचार का तात्पर्य एक ऐसी विधि अथवा प्रक्रिया से है, जिसमें रोग से क्षतिग्रस्त कोशिकाओं आदि की मरम्मत और पुनर्निर्माण संभव होता है। शल्य-चिकित्सा में वर्तमान में जो आधुनिक उपचार-प्रणालियाँ प्रचलित हैं, उनमें लाभ के साथ-साथ हानियाँ भी जुड़ी हैं, लेकिन शल्य चिकित्सा की आयुर्वेद आधृत उपचार पद्धति में रोग के उपचार के साथ-साथ संभावित सभी दुष्प्रभावों से बचाव हेतु स्वास्थ्य प्रबंधन की तकनीकों को भी सम्मिलित किया गया है। सुश्रुत संहिता में उल्लेखित श्लोक-संदर्भों के माध्यम से इस अध्याय में आयुर्वेद की उपचारात्मक अवधारणा को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय है—वेदों में पुनर्निर्माण अथवा प्लास्टिक सर्जरी। इसके अंतर्गत जन्मजात व्याधियों एवं दरदनाक स्थितियों में अंग प्रत्यारोपण से संबंधित आयुर्वेदिक चिकित्सा सिद्धांतों का विस्तृत विवेचन किया गया है। आचार्य सुश्रुत ने जन्मजात विकारों का कई वर्गों में उल्लेख किया है; जैसे—आदिबालप्रवृत्त, जन्मबालप्रवृत्त, दोषबालप्रवृत्त, संघटबालप्रवृत्त, कालबालप्रवृत्त, दैवबालप्रवृत्त और स्वभावबालप्रवृत्त आदि।

उक्त वर्गीकरण के आधार पर रोगों का सही-सही निदान और उपचार संभव हो पाता है। आयुर्वेद में औषधियों एवं प्रबंधन तकनीकों के अलावा उपचार की शल्य विधियों के अंतर्गत प्रत्यारोपण का भी विस्तृत विवेचन है। यह विधि मुख्यतया वहीं अपनाई जाती है; जहाँ रुग्ण अंग-प्रत्यंगों को हटाकर उस स्थान पर वैकल्पिक अंगों का पुनर्रोपण अत्यंत ही आवश्यक हो जाता है।

सुश्रुत संहिता में उपचार की इस प्रत्यारोपण तकनीक की विस्तृत विवेचना मिलती है। नासिका संधान, कर्ण संधान, ओष्ठ संधान आदि के रूप में प्लास्टिक सर्जरी की तकनीक भी प्राचीनशास्त्र में वर्णित है। वैदिक ज्ञान संपदा के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो ऋषियों ने चिकित्सा शास्त्र के रूप में एक उत्कृष्ट उपचार-प्रणाली एवं स्वास्थ्य संवर्द्धन की तकनीकों को मानव सभ्यता के प्रारंभ में ही विरासत रूप में हमें सौंप दिया था। इस विरासत के महत्त्वपूर्ण सूत्र-सिद्धांतों को यह शोधकार्य अत्यंत उपादेयी रूप में प्रस्तुत करता है।

षष्ठ अध्याय है—वेदों में विविध उद्धरण। इस अध्याय में आयुर्वेदिक शल्य चिकित्सा सिद्धांत से संबंधित अन्य महत्त्वपूर्ण पहलुओं एवं तकनीकों का विवेचन किया गया है। इसमें मुख्य रूप से संज्ञाहरण और संज्ञास्थापन, योग्य, यज्ञोपैथी एवं विष विज्ञान को सम्मिलित किया गया है। संज्ञाहरण की तकनीक का प्रयोग शल्यकार्य में शल्य स्थान की चेतनाशून्यता के लिए किया जाता है।

इसी तरह चेतना वापस लाने में संज्ञास्थापन की तकनीक का उल्लेख है। योग्य से तात्पर्य शल्य क्रिया के अभ्यास और कुशलता से है। यज्ञोपैथी से वातावरण का शोधन और स्वास्थ्यवर्द्धन, दोनों उद्देश्य पूरे होते हैं। अतः ऋषियों ने उपचार एवं आरोग्य में यज्ञोपैथी को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। विष विज्ञान के अंतर्गत अगद तंत्र एवं अष्टांग

आयुर्वेद में वर्णित विभिन्न प्रकारों के विष एवं उनकी प्रभावकारिता के अनुसार चिकित्सा में उनकी प्रयोग विधि का उल्लेख है।

सप्तम अध्याय है—वैदिक शल्य चिकित्सा की अवधारणा एवं आधुनिक विज्ञान में संबंध। इस अध्याय में आयुर्वेद विज्ञान में प्रयुक्त शल्य चिकित्सा में वर्णित अनेकों ऐसी तकनीकों एवं प्रक्रियाओं का विवेचन है, जिन्हें आधुनिक विज्ञान द्वारा भी अपनाया गया है। कृमि संबंधित संक्रमण और इसके उपचार की प्रक्रिया, रोक-थाम संबंधी सिद्धांतों में दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या का महत्त्व भी आधुनिक चिकित्सा में बताया जाने लगा है। शल्य चिकित्सा में सूर्य किरणों के प्रयोग को वर्तमान में विशेष उपकरणों के माध्यम से ऑपरेशन थियेटर में वैकल्पिक रूप में प्राप्त किया जाता है। इसी तरह रोगों के निदान में भी आयुर्वेदिक अवधारणाओं का उपयोग आधुनिक चिकित्सा में देखा जा सकता है।

इस शोध अध्ययन का उद्देश्य आधुनिक एवं प्राचीन चिकित्सा विज्ञान की तुलना करना नहीं अपितु वैदिक चिकित्सा सिद्धांतों की सूक्ष्मता, वैज्ञानिकता और समग्रता को सामने लाना है, ताकि भारतीय चिकित्सा परंपरा के मूलभूत सिद्धांतों से जनसामान्य को अवगत कराया जा सके।

आयुर्वेद चिकित्सा में मानव जीवन को भौतिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक आयामों का समन्वय मानते हुए उपचार की प्रक्रियाओं को समग्रता में प्रस्तुत किया गया है; जबकि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भौतिक शरीर को ही महत्त्व देता है। यह अध्ययन इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि इसमें प्रस्तुत चिकित्सा सिद्धांत वर्तमान में भी अत्यंत उपयोगी एवं प्रासंगिक है। ❑

एक महात्मा एक राजा को प्रतिदिन उपनिषद् पढ़ाने जाया करते थे। उनके द्वारा दिए गए वेदांत दर्शन के उपदेशों को प्राप्त करके राजा राज्य के सभी तनावपूर्ण कार्य करते हुए भी अपूर्व मस्ती में रहते थे। परंतु एक दिन महात्मा जी राजा से मिलने पहुँचे तो उन्हें लगा कि राजा किसी कारण अत्यंत चिंतित हैं। कारण पूछने पर उन्होंने बताया—"मैंने रात में स्वप्न में देखा कि मैंने अपनी माँ का वध कर दिया है। मैं अपनी माँ से अत्यंत प्रेम करता हूँ और यह सोचकर परेशान हूँ कि ऐसा कुविचार मेरे मन में कैसे आया?"

महात्मा जी ने कुछ देर विचार किया, फिर राजा से बोले—"राजन्! तुम्हारा कल का भोजन किसने तैयार किया था?" राजा ने अपने रसोइये को बुलवा भेजा। रसोइये ने घबराते हुए उत्तर दिया कि वह कल अस्वस्थ था और उस दिन का खाना एक नए व्यक्ति ने बनाया था। जाँच-पड़ताल करने पर ज्ञात हुआ कि वह व्यक्ति कुछ दिन पूर्व ही कारावास से छूटा था, जहाँ अपनी माँ की हत्या के जुर्म में वह सजा काटकर आया था।

महात्मा जी ने राजा से रसोइये को माफ करने को कहा और नए व्यक्ति को किसी और विभाग में कार्य देने के लिए बोला। तदुपरांत वे राजा को संबोधित करते हुए बोले—"राजन्! संस्कारों का निर्माण अन्न से होता है। हमेशा ध्यान रखना कि दूषित संस्कारों वाला भोजन कुविचारों को और सात्त्विक संस्कारों वाला भोजन सद्विचारों को जन्म देता है।"

जीवन देवता की साधना-आराधना

मनुष्य जीवन प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष है, जिसमें व्यक्ति जो चाहे वह फल पा सकता है। परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में जीवन प्रत्यक्ष देवता है, जिसकी साधना व आराधना तुरंत साधक को फल देती है। ईश्वर की आराधना का फल कब मिले, कुछ कह नहीं सकते, लेकिन आत्मदेवता तुरंत फलित होते हैं। आवश्यकता इसके स्वरूप को समझने व इसमें समाहित संभावनाओं को साकार करने की है।

मानवीय जीवन असीम संभावनाओं से भरा हुआ है। शास्त्रों में ऋषियों ने बारंबार व स्पष्ट रूप से कहा है कि व्यक्ति में वे सारी संभावनाएँ बीज रूप में विद्यमान हैं, जो स्वयं परमात्मा में हैं। 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी' के रूप में, ईश्वर के राजकुमार के रूप में मनुष्य ईश्वर की सबसे अनुपम प्रतिकृति है। यदि वह चाहे तो ईश्वरप्रदत्त अंतर्निहित क्षमताओं को जाग्रत करते हुए इनको साकार कर सकता है और अद्‌भुत कार्य कर सकता है। इसी आधार पर मानव जीवन को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं। अपने तप एवं पुरुषार्थ के आधार पर स्वर्ग का राज्य भी उसके लिए जरा-सा भी दूर नहीं रह जाता।

इसके लिए ईश्वर ने मनुष्य को सकल संभावनाओं के साथ युक्त किया है। मनुष्य को शरीर, समय एवं मनोयोग के रूप में ऐसे प्राकृतिक उपकरण एवं साधन उपलब्ध हैं, जिनका सही नियोजन करते हुए वह मनचाही उपलब्धि को प्राप्त कर सकता है। इसके साथ कल्पना, इच्छा, विचार, भाव एवं अंतर्प्रज्ञा जैसी शक्तियाँ एवं विशेषताएँ उसको विशिष्ट बनाती हैं, जिनका नियोजन करते हुए वह अपनी इच्छित सृष्टि का सृजन कर सकता है।

आवश्यकता मानव जीवन की गरिमा के बोध की है तथा तदनुरूप जीवनलक्ष्य के निर्धारण एवं इस ओर बढ़ने की है। प्राय: व्यक्ति ऐसी व्यवस्था न हो पाने के कारण पशुवत् जीवन जीते देखा जाता है और यदि अपना स्वार्थ एवं अहं का दायरा और भी संकीर्ण एवं क्षुद्र हुआ तो उसे असुर और नर-पिशाच जैसा घृणित जीवन तक जीते देखा जाता है, जिसमें न तो व्यक्ति स्वयं चैन से रह पाता है और न ही दूसरों को चैन से जीने देता है। ऐसे में अज्ञान और तम की बेहोशी में इस बहुमूल्य जीवन को दो कौड़ी के भाव से यों ही बरबाद करते देखा जाता है।

इस त्रासदी से बाहर आने के लिए उस सूझ एवं साहस की आवश्यकता होती है, जो ढर्रे पर जीवन के बजाय मानवीय गरिमा के अनुरूप जीवनलक्ष्य को निश्चित करने की पहल कर सके। इसी आधार पर व्यक्ति अपनी क्षमताओं पर आधारित लक्ष्य को साधते हुए जीवन की सार्थक ऊँचाइयों तक पहुँच पाता है, जिस पर वह गर्व कर सके और दूसरों के लिए भी प्रेरक मिसाल बन सके।

लक्ष्य का सही निर्धारण हो इसके लिए आवश्यक हो जाता है कि अपने व्यक्तित्व की सही समझ विकसित हो। इसके लिए रोज स्व-मूल्यांकन करना होता है। परमपूज्य गुरुदेव इसे आत्मबोध एवं तत्त्वबोध की साधना कहा करते थे; जिसमें अपने वास्तविक स्वरूप के बोध से लेकर दैनिक कर्त्तव्य कर्मों को पूरा करते हुए अपनी समीक्षा के साथ संसार-समाज के सार-सबक को ग्रहण करते हुए मानवीय गरिमा के अनुकूल जीवन जिया जाता है और जीवन में आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त होता है।

इसके साथ ही वह जीवन-दृष्टि विकसित होती है, जो एक स्वस्थ एवं प्रभावी जीवनशैली के रूप में मूर्त हो, जो व्यक्ति के आहार-विहार, व्यवहार एवं विचार के साथ मिलकर बनती है। दिन भर इनका लेखा-जोखा रखना होता है। इसके लिए 24 घंटों का हिसाब-किताब रखना पड़ता है कि कैसे इनका सही नियोजन किया गया। खान-पान से लेकर दिन भर का संग साथ और भाव चिंतन कैसा रहा, इस पर सजग दृष्टि रखनी पड़ती है, साथ ही दूसरों के साथ वाणी एवं व्यवहार की स्थिति कैसी रही, इसका भी आकलन हमेशा ही करते रहना पड़ता है।

इस तरह नित्य जीवन के हर आयाम का ध्यान रखते हुए शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक हर पक्ष को तराशना पड़ता है। जीवन की चुनौतियों का धैर्य एवं साहस के साथ सामना करते हुए इन्हें उत्कर्ष की सीढ़ी बनाया जाता

है और व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में सफलता की मंजिलों को भी तय किया जाता है, लेकिन इसके साथ यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि यह सब एकतरफा न हो तथा मात्र स्वार्थपूर्ति एवं अहंतुष्टि का साधन भर न हो।

जीवन को पूर्णता देने के लिए, इसके संतुलित विकास के लिए इसमें पारमार्थिक भाव का जुड़ना आवश्यक हो जाता है, जो आध्यात्मिक आयाम के साथ जुड़ने पर ही सरल-सहज एवं संभव होता है। तभी जीवन की पूरी संभावनाएँ साकार होने की दिशा में सार्थक कदम बढ़ पाते हैं और जीवन में बाहरी उपलब्धियों के साथ आंतरिक शांति-सतोष का संगम हो पाता है।

इस तरह जीवन देवता एक तरह से कामधेनु, कल्पवृक्ष एवं पारस सरीखा सिद्ध होता है, जिसकी साधना एवं आराधना प्रत्यक्ष फल प्रदान करने वाली होती है, लेकिन इसका विधि-विधान ईश्वर को खुश करने के लिए अपनाए गए कोरे कर्मकांड से भिन्न होता है, जहाँ मात्र चिह्नपूजा के साथ भगवान को रिझाने के प्रयास चल रहे होते हैं और इनका प्रतिफल पूरी तरह से भगवान की कृपा पर निर्भर होता है; जबकि जीवन देवता के साथ सब कुछ प्रत्यक्ष होता है, लेकिन इसके लिए चौबीस घंटे, दिन के हर पल सजग-सचेष्ट रहकर जीवन-साधना में निमग्न रहना पड़ता है। इसमें किसी शॉर्टकट की गुंजाइश नहीं रहती। यहाँ जीवन-साधना के राजमार्ग पर व्यक्तित्व के हर पहलू को परिष्कृत करते हुए मंजिल की ओर बढ़ना होता है, जिसका हर पड़ाव लक्ष्य सिद्धि के आश्वासन के साथ साधक को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित कर रहा होता है। ❑

महाराज कृष्णदेव राय तेनालीराम की बुद्धि की परीक्षा लेने के लिए समय-समय पर उनसे बेतुके सवाल किया करते थे। एक दिन उन्होंने तेनालीराम से पूछा—"यह बताओ कि हमारे राज्य में कबूतरों की कुल संख्या कितनी है? सही संख्या जानने के लिए हम तुम्हें एक सप्ताह का समय देते हैं, यदि तुम गणना नहीं कर पाए तो तुम्हारा सिर कलम कर दिया जाएगा।" तेनालीराम से कुढ़ने वाले दरबारियों ने सोचा कि इस बार तेनालीराम का बच पाना मुश्किल है।

एक हफ्ते बाद तेनालीराम फिर दरबार में हाजिर हुए। महाराज के पूछने पर वे बोले—"महाराज! हमारे राज्य में कुल तीन लाख, बाईस हजार, चार सौ चौबीस कबूतर हैं। आप संतुष्ट न हों तो किसी से इनकी गिनती करवा लें। यदि गिनती ज्यादा हुई तो ये वो कबूतर हैं, जो हमारे राज्य में मेहमान बनकर आए हैं और कम हुई तो उन कबूतरों के कारण, जो दूसरे राज्य में मेहमान बनकर गए हैं।" कृष्णदेव राय तेनालीराम की हाजिरजवाबी सुनकर मुस्करा उठे।

पर्यावरण के प्रति समर्पण

अपनी रक्षा के लिए हम तो केवल ईश्वर की आराधना मात्र ही कर सकते हैं, ताकि हमारा शरीर बाहरी और आंतरिक रूप से स्वस्थ रहे। जब शरीर स्वस्थ रहेगा, तभी आराधना पूर्ण होगी। हमारे शरीर के स्वस्थ होने के पीछे सारा खेल ऊर्जा का है। ऐसा इसलिए; क्योंकि इस ऊर्जा से ही हमें अग्नि मिलती है। अग्नि सृष्टि के आदिकाल में उत्पन्न हुई थी। वही अग्नि अब भिन्न-भिन्न रूपों में चारों ओर फैलकर हमारे शरीर में ऊर्जा का उत्पादन कर रही है।

रामचरितमानस में हमने पढ़ा या सुना होगा कि रावण के पुत्र मेघनाद के बाण से जब लक्ष्मण मूर्च्छित हो जाते हैं तो उनकी मूर्च्छा भंग करने के लिए हनुमान जी पर्वत समेत संजीवनी लेकर आते हैं, फिर सुषेण वैद्य संजीवनी बूटी का रस निकालकर लक्ष्मण जी के मुँह में डालते हैं, जिससे उनकी मूर्च्छा टूट जाती है और वे फिर जीवित हो जाते हैं। अनेक लोग जगदीश चंद्र बोस की उस बात को भी मानने से इनकार कर देते हैं कि पौधे भी हँसते और रोते हैं। ऐसा इसलिए; क्योंकि उनमें भी जीवन होता है।

भीषण गरमी की मार झेल रहे पूरे मालवा क्षेत्र में लोग दोपहर के समय शीतल छाया के लिए भटकते हुए नजर आते हैं। ऐसे में पर्यावरण के लिए काम कर रहे लोगों के प्रति मन श्रद्धा से भर जाता है। ऐसे ही एक पर्यावरणप्रेमी शिक्षक रोजवास निवासी देवीसिंह परिहार भी हैं, जो पर्यावरण के प्रति जीवन समर्पित कर पौधे लगाने का कार्य निरंतर कई वर्षों से कर रहे हैं। उनके द्वारा क्षेत्र में अनेक स्थानों पर लगाए गए पौधों ने वृक्ष का रूप ले लिया है एवं आज वे राहगीरों को शीतल छाया प्रदान कर रहे हैं।

पर्यावरणप्रेमी परिहार ने अनेक स्थानों पर वृक्षारोपण किया है एवं उनको नियमित रूप से पानी भी दिया है। परिहार स्वयं के व्यय पर पौधों की रक्षा हेतु ट्री गार्ड भी स्थापित करते हैं। उनके नियमित पानी देने एवं देख-भाल का नतीजा यह रहता है कि उनके द्वारा लगाए गए अधिकांश पौधे शीघ्र ही वृक्षों का रूप ले लेते हैं।

पर्यावरणप्रेमी परिहार स्वयं तो पौधे लगाते ही हैं, साथ ही वे पर्यावरण जागरूकता हेतु विभिन्न संस्थानों में पौधे भी वितरित करते हैं। वे अधिकांशत: शासकीय विद्यालयों में बच्चों को पौधे वितरित करते हैं एवं उन्हें पर्यावरण से संबंधित जानकारियाँ प्रदान करते हैं। इसके बाद श्री परिहार विद्यालय प्रांगण में विभिन्न प्रजातियों के पौधे लगाकर बच्चों को पौधे लगाने का प्रायोगिक ज्ञान भी प्रदान करते हैं।

वर्तमान में यह क्षेत्र भीषण जल संकट के दौर से गुजर रहा है। ऐसे में जहाँ ग्रामीणों को पानी उपलब्ध नहीं हो पा रहा है तो वहीं परिहार दूर-दूर से सायंकाल केन बाँध का पानी लाकर पौधों को सींचते हैं। परिहार का मानना है कि क्षेत्र में उचित अनुपात में वृक्ष होने से वर्षा पर प्रभाव होगा एवं अच्छी वर्षा का लाभ पूरे क्षेत्र को मिलेगा। परिहार ने बताया कि वे विगत लगभग 19 वर्षों से सतत इसी प्रकार वृक्षारोपण एवं पर्यावरण जागरूकता हेतु कार्य कर रहे हैं।

परिहार ने बताया कि उन्होंने आम, अनार, पीपल, नीम, बरगद, गुड़हल, अशोक, कनेर, मधुमालती, जामुन, बिल्वपत्र, हरश्रृंगार, चाँदनी, रातरानी, खिरनी, शीशम, कटहल, चमेली, गुलमोहर सहित अनेक प्रजातियों के लगभग आठ हजार पौधे दर्जनों अलग-अलग स्थानों पर लगाए हैं, जिनमें से अधिकांश पौधे उचित देख-भाल में फल-फूल रहे हैं। परिहार पर्यावरण में रुचि रखने वाले लोगों को पौधे भी उपलब्ध करवाते हैं एवं उनकी इस मेहनत से दर्जन भर से अधिक लोगों में पर्यावरण के प्रति विशेष जागरूकता भी देखने को मिल रही है।

परिहार पर्यावरण जागरूकता हेतु विभिन्न फलों के बीजों को वर्ष भर एकत्रित कर वर्षा ऋतु के दौरान किसी भी निर्जन पड़े स्थान पर लगा देने से पौधों के रूप लेने के बारे में भी लोगों को समझाते हुए बताते हैं कि आम, नीम, आँवला, पपीता, चीकू, सीताफल, मोरमी, कटहल आदि के बीज सहेजकर उन्हें वर्षा ऋतु में पौधों का रूप दिया जा सकता है।

हम प्रयोग कर सकते हैं कि यदि कोई संवेदनशील व्यक्ति किसी पेड़ के नीचे खड़े होकर इतना भर कह दे कि कल मैं इस पेड़ को काटने वाला हूँ, तो वह शख्स यह महसूस कर सकता है कि वह पेड़ कुम्हलाने लगा है। यदि हम किसी पशु या पक्षी से अगाध प्रेम करते हैं तो हम देखेंगे कि हमारा यह पालतू पशु या पक्षी हमारे ही पास मँडराने लगता है।

बड़े-बुजुर्ग कहा करते थे कि तुलसी का पत्ता तोड़ने से पहले चुटकी बजा लेना चाहिए। इसका तात्पर्य यह होता है कि मैंने तुलसी को कहकर उसके कुछ पत्ते तोड़े। हमने बहुत से साँप देखे होंगे, उनमें से कुछ विषैले भी होते हैं तो कुछ बिना विष के। जो साँप विषैले होते हैं, वे हम पर तभी हमला करते हैं, जब पहला हमला हमने उन पर किया हो, अन्यथा वे चुपचाप अपने रास्ते निकल जाते हैं। ये घटनाक्रम बताते हैं कि हमें अन्य जीवों एवं पेड़-पौधों में उपस्थित जीवन चेतना का सम्मान करते हुए उनकी वृद्धि के उपायों को करना चाहिए। ऐसे ही प्रयास पर्यावरण को संरक्षित कर सकेंगे। ❑

राजा प्रसेनजित की पुत्री विपुला उद्यान भ्रमण हेतु निकली थी। वह इतनी रूपवान थी कि प्रत्येक युवक उसे प्राप्त करने के लिए बेचैन था। अरिहंत नामक संन्यासी राजोद्यान में ठहरे हुए थे। वे भगवती सरस्वती की वंदना में निमग्न थे और राजोद्यान का कण-कण उनके दिव्य संगीत की धुनों से भावविभोर हो रहा था। विपुला भी इस संगीत को सुनकर खिंचती चली आई और सुनते-सुनते स्वतः ही उसके पाँव थिरकने लगे। कितने ही घंटे इसी प्रकार व्यतीत हो गए। आकर्षित होकर विपुला ने गले में पड़ी माला उतारकर अरिहंत के गले में डाल दी।

अरिहंत जो अब तक भक्ति रस में डूबकर चेतनाशून्य थे, उन्होंने गले में माला पड़ते ही अपनी आँखें खोलीं। सारे घटनाक्रम का भान होते ही उन्होंने गले में पड़ी माला उतारकर राजकुमारी को वापस कर दी। महाराज व महारानी को पूर्ण घटनाक्रम ज्ञान हुआ तो वे राजोद्यान पहुँचे और वहाँ पहुँचकर अरिहंत से बोले—"सौभाग्य की बात है कि विपुला ने आपका वरण किया है। आप राजकुमारी से विवाह करें और आधे राज्य के भी स्वामी बनें।"

अरिहंत करबद्ध होकर राजा प्रसेनजित से बोले—"राजन्! एक संन्यासी होने के नाते मैं तो पहले ही प्रभु के प्रेम में पड़ चुका हूँ। अब तो यह जीवन उन्हीं की साधना और उन्हीं की तपश्चर्या के लिए समर्पित है।" राजकुमारी ने यह वचन सुनकर निश्चय किया कि भले ही उसका विवाह अरिहंत के साथ न हो, पर वह भक्ति के आदर्शों पर ही जीवन व्यतीत करेगी। वासना पर भक्ति की विजय हुई।

युगगीता —254

आशाओं की फाँसी में जीवन गँवाते हैं आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य

(श्रीमद्भगवद्गीता के दैवासुरसम्पद्विभागयोग नामक सोलहवें अध्याय की बारहवीं किस्त)

[विगत किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के ग्यारहवें श्लोक की व्याख्या की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं कि आसुरी वृत्ति वाले लोग मृत्युपर्यंत रहने वाली अपार चिंताओं का आश्रय लेने वाले, पदार्थों का संग्रह एवं विषयभोगों में तत्पर रहने वाले और 'यही सुख है' ऐसा मानने वाले होते हैं। ऐसे व्यक्ति जिन्होंने अपने जीवन का मूल ध्येय भोगों को भोगना ही बना लिया हो, ऐसे आसुरी स्वभाव वाले लोग असंख्य चिंताओं का आश्रय लिए हुए होते हैं; क्योंकि भोगों को भोगने का कभी कोई अंत नहीं होता। एक कामना पूर्ण नहीं हो पाती कि नई कामना की पूर्ति की चिंता मनुष्य को सताने लगती है। ऐसी कामनाओं का अंत जीवन भर नहीं होता। यहाँ तक कि ऐसी कामनाएँ जीवनपर्यंत यानी मृत्यु के बाद भी इन मनुष्यों का साथ नहीं छोड़ती हैं और ऐसे लोग मृत्यूपरांत अधोयोनियों में प्रेत-पिशाच इत्यादि बनकर अपनी अपूर्ण कामनाओं की पूर्ति की इच्छा लिए भटकते रहते हैं। ऐसा करने के पीछे बार-बार दुःख मिलने के बाद भी, बार-बार कामनाओं की अपूर्णता अनुभव करने के बाद भी, उन्हीं के पीछे भटकते रहने के पीछे उनका कारण यह होता है कि वे इसी को जीवन या इसी को सुख का आधार मान बैठते हैं।

श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसे व्यक्तियों के लिए फिर जीवन—पदार्थ की खोज और पदार्थ के संग्रह का माध्यम बन जाता है। जो व्यक्ति अपने को, अपने जीवन के उद्देश्य को या तो खोजना नहीं चाहता या खोज नहीं सकता, वह फिर पदार्थ की खोज में निकल पड़ता है। जो पदार्थ के संग्रह को सत्य मानता हो तो उसके चिंतन से धर्म, न्याय, नीति जैसी बातें विदा हो जाती हैं। बिना एक को वंचित किए दूसरे को दे पाना संभव नहीं है। ऐसा व्यक्ति फिर इसी दौड़ को जीवन में सुख का आधार मानकर बैठ जाता है और फिर ये ही कभी न पूरी हो सकने वाली कामनाएँ उसे जीवनपर्यंत यहाँ तक कि मृत्यु के बाद भी सताती हैं और वह असंतुष्ट ही बना रहता है।]

श्रीभगवान आगे कहते हैं कि—

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्॥ 12॥

शब्दविग्रह—आशापाशशतैः, बद्धाः, कामक्रोधपरायणाः, ईहन्ते, कामभोगार्थम्, अन्यायेन, अर्थसञ्चयान्॥

शब्दार्थ—आशा की सैकड़ों फाँसियों से (**आशापाशशतैः**), बँधे हुए मनुष्य (**बद्धाः**), कामक्रोध के परायण होकर (**कामक्रोधपरायणाः**), विषयभोगों के लिए (**कामभोगार्थम्**), अन्यायपूर्वक (**अन्यायेन**), धनादि पदार्थों को संग्रह करने की (**अर्थसञ्चयान्**), चेष्टा करते रहते हैं (**ईहन्ते**)।

अर्थात—आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य आशा की सैकड़ों फाँसियों में बँधे हुए काम-क्रोध के परायण होकर विषय भोगों के लिए अन्यायपूर्वक धन संग्रह की चेष्टा में निरत रहते हैं। यह कामना पूरी न हो सकी तो क्या, इससे अगली वाली अवश्य पूरी होगी—ऐसी आशाओं को भगवान श्रीकृष्ण आशा की फाँसियाँ कहते हैं—क्योंकि ये व्यक्ति को मारती भी नहीं हैं और उसके गले में भी अनवरत पड़ी रहती हैं।

वे कहते हैं कि आसुरी स्वभाव वाले मनुष्यों के मन में विविध प्रकार की कामनाओं की पूर्ति की कल्पनाएँ सतत उठा करती हैं और उन्हीं की पूर्ति के लिए वे अनेक आशाएँ मन में सँजोकर बैठ जाते हैं। आज उनका मन एक विषय

भोग की पूर्ति की आशा लिए बैठा होता है तो वही मन कल किसी ओर खिंचने लगता है। एक जगह आशा पूरी न हो पाए तो मन टूटता है, पर तब तक वे एक नई जगह आशा लगाकर बैठ जाते हैं। इस तरह वे किसी भी आशा के बंधन से छूट नहीं पाते हैं। इसी को श्रीभगवान आशाओं की सैकड़ों फाँसियों का बंधन कहते हैं।

ये आशाएँ अपनी पूर्ति के लिए उन्हें काम व क्रोध के बंधनों में डालती हैं। कामनाएँ पूरी न हो पाएँ तो क्रोध का सबब बनती हैं और पूरी हो जाएँ तो मद-अभिमान को जन्म देती हैं। सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि फिर इन कामनाओं की पूर्ति के लिए उनको अनीति का, अनुचित का, अन्याय का, अमर्यादित आचरण का और अवांछनीय प्रवृत्तियों का सहयोग लेना पड़ता है।

पहले ही यह कहा गया है कि विषयभोगों को आवश्यकता से अधिक भोगने के लिए कोई-न-कोई कुपथ अपनाना ही पड़ेगा। यदि किसी एक को धन का संचय करना हो तो उसे किसी दूसरे का शोषण करना ही होगा। इसीलिए ऐसे आसुरी प्रवृत्ति के मनुष्य काम, क्रोध के वशीभूत होकर अनीतिपूर्वक धन-संग्रह की दौड़ में संलग्न हो जाते हैं। ऐसा करते हुए वे भूल जाते हैं कि कितनी भी संपदा इकट्ठी हो जाए, एक-न-एक दिन वो हमारे ही अंत का कारण बनती है।

एक प्रसिद्ध रूसी लेखक ने इस संदर्भ में एक प्यारी कथा लिखी है। उसने लिखा है एक व्यक्ति के विषय में, जिसने कहीं एक विज्ञापन पढ़ा कि साइबेरिया में एक गाँव है, जहाँ वे लोगों को नि:शुल्क जमीन दे रहे हैं। जितनी चाहें, उतनी ले जाएँ। आश्चर्य हुआ उसे ऐसा पढ़कर तो वह पता पूछता-पूछता उस गाँव में पहुँचा। वहाँ पहुँचने पर उसकी भेंट ग्रामप्रधान से हुई। उसने अपनी जिज्ञासा उसके सामने रखते हुए पूछा—''क्या सचमुच यहाँ जमीन मुफ्त दी जा रही है?'' उत्तर 'हाँ' में मिला।

उसने कहा—''जमीन लेने के लिए मुझे क्या करना होगा?'' गाँव का प्रधान बोला—''कुछ विशेष नहीं। बस, सूर्योदय होने की प्रतीक्षा करो। सूर्य उदय होने पर हम तुम्हें 4 झंडे देंगे। उन्हें लेकर तुम दौड़ना, पहले उत्तर दिशा में दौड़ो और एक झंडी वहाँ गाड़ दो, फिर पूर्व, फिर पश्चिम, इस तरह तीन झंडियाँ गाड़ने के बाद इसी स्थान पर लौट आना, जब यहाँ आकर समाप्ति की रेखा पर सूरज के डूबने से पहले अंतिम झंडी गाड़ दोगे तो जितनी जमीन तुमने मापी, उतनी तुम्हारी हुई—ऐसा नियम हमने बनाया है।'' वह व्यक्ति बोला—''यह तो बड़ी साधारण-सी शर्त है, फिर आज तक कोई इसे जीत कैसे न सका?'' यह सुनकर ग्रामप्रधान हँसा और बोला—''सुबह दौड़ो तो तुम्हें पता चलेगा।''

अगले दिन, सुबह के सूरज के निकलने के साथ उसने दौड़ना आरंभ किया, पर जितना वो दौड़ता, उतना ही लालच बढ़ता कि थोड़ा और दौड़ लूँ तो और ज्यादा जमीन मेरी हो जाए। लालच में आकर उसने अपने साथ लाया भोजन फेंका, पानी फेंका, कपड़े कम करे, ताकि ज्यादा-से-ज्यादा जमीन माप सके। दो बजे दोपहर को उसे होश आया तो पहली झंडी उसने गाड़ी। फिर दूसरी दिशा में दौड़ा और दूसरी झंडी गाड़ी, फिर तीसरी दिशा में तीसरी झंडी गाड़ी।

इस दौड़ में और बिना भोजन-पानी के उसकी सारी ऊर्जा चली गई। जब उसने वापस गाँव की ओर दौड़ना शुरू

परमात्मा की शरणागति पाए बिना मनुष्य जीवन जैसा बहुमूल्य अवसर भी बेकार में ही बीत जाता है।

किया तो उसकी जान लगभग निकलने को थी। जैसे-तैसे वो शरीर को घसीटते हुए समाप्ति की रेखा की ओर लेकर चला, पर उसकी आँखों के आगे सूरज डूब गया और वो निढाल होकर जमीन पर गिर पड़ा। उस समय उसके हाथों और समाप्ति की रेखा के बीच में 6 फीट की दूरी थी। उसने ग्रामप्रधान की ओर देखा और बोला—''इस जमीन का आप क्या करोगे, यह जो 6 फीट बच गई हैं। उसे लगा कि ग्रामप्रधान शायद कुछ छूट देगा, पर प्रधान बोला—''इसमें हम तुम्हें दफनाएँगे; क्योंकि कब्र के लिए 6 फीट जमीन ही काफी होती है। बस, तुम्हारे मरने की प्रतीक्षा कर रहे हैं?''

बस, ऐसे ही संपदा, संपत्ति के संचय की दौड़ अंत में व्यक्ति को मृत्यु के मुँह पर लाकर खड़ा कर देती है और तब तक बहुत देर हो जाती है; क्योंकि हाथ में कुछ आता नहीं, परंतु जीवन भर अनीति-अन्याय से किए गए कार्यों का बोझ जरूर सिर पर आ जाता है। आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य यों ही अपने जीवन को गँवा बैठते हैं। (क्रमश:)

प्रसन्नता का राजमार्ग

हर मनुष्य खुशी की तलाश में है। जाने-अनजाने में व्यक्ति के हर प्रयास एवं चेष्टाओं के पीछे उद्देश्य एक ही होता है कि वह किसी तरह से खुश रहे। उसके दिन भर के क्रियाकलाप अमूमन इसी एक उद्देश्य के इर्द-गिर्द केंद्रित रहते हैं, लेकिन शाम को जब लेखा-जोखा किया जाता है तो अधिकांश स्वयं को खुश के बजाय दु:खी अधिक पाते हैं। जीवन के अंतिम पड़ाव पर जब जीवन भर का लेखा-जोखा किया जाता है तो अधिकांश व्यक्ति असंतुष्ट पाए जाते हैं, बल्कि गहरे पश्चात्ताप, दु:ख एवं अशांति से क्लांत देखे जाते हैं। खुशी की मृगतृष्णा में जीवन यों ही व्यर्थ चला जाता है और बचता है एक भाव कि एक मौका और मिलता तो जीवन को सही ढंग में जी पाते।

वास्तव में मनुष्य खुशी के लिए दो स्तर पर प्रयास करता है। जिसमें सबसे पहला स्तर है देह का, जिसमें इंद्रिय सुख व भोग निहित रहते हैं तथा दूसरा है संसार के धन-वैभव, नाम-यश, सफलता एवं बुलंदियों का—जिसे हम मानसिक स्तर कह सकते हैं। इंद्रिय सुख उसे तत्काल खुशी देते हैं, लेकिन यह खुशी लगातार नहीं बनी रहती।

एक समय के बाद ये ही सुख, भोग नीरस लगने लगते हैं। जिन व्यंजनों पर व्यक्ति स्वाद-सुख के वशीभूत होकर टूट पड़ता था, बीमार होने पर व्यक्ति इन्हें झाँककर तक नहीं देखना चाहता। तब समझ आता है कि इंद्रिय सुख भोगों में जो खुशी की प्रतीति हो रही थी, वह स्थायी नहीं थी। साथ ही इनमें अधिक लिप्तता व्यक्ति की जीवनीशक्ति को निचोड़कर उसके लिए नाना प्रकार की आधि-व्याधियों का कारण तक बनती है। ऐसे में विषय-सुखों में खुशी की खोज अंतत: एक अधूरी चेष्टा ही साबित होती है।

इंद्रिय सुख के बाद सांसारिक सुख-उपलब्धियाँ भी व्यक्ति को तात्कालिक रूप में गहरे हर्ष एवं सुख की अनुभूति देती हैं। व्यक्ति तात्कालिक खुशी के शिखर पर स्वयं को पाता है। धन पाकर व्यक्ति को लगता है कि जैसे सारा संसार उसकी मुट्ठी में आ गया। अब वह जो चाहे वह खुशी खरीद सकता है, जीवन के सुख-आनंद को भोग सकता है, लेकिन सुख की यह दौड़ भी धीरे-धीरे मृगमरीचिका ही साबित होती है।

एक समय के बाद धन के साथ अर्जित खुशी अब कई मुसीबतों का कारण बन जाती है और अशांति को ही बढ़ाती है। बढ़ते धन के साथ चित्त में दबी इच्छाएँ भी उभरती हैं, जो अपने भोग के लिए लालायित करती हैं और व्यक्ति को कई तरह की गलत आदतों एवं लतों का शिकार बना देती हैं, जो अंतत: व्यक्ति की बरबादी का कारण बनती हैं। फिर धन के रख-रखाव, इसको बनाए रखने तथा संचित धन के खोने की चिंता जीवन में अंतहीन तनाव एवं दु:ख का कारण बनती है।

इसी तरह नाम-यश एवं किसी उपलब्धि की बुलंदी पर व्यक्ति को लगता है कि वह खुशियों के शिखर पर विराजमान है। इसके मद में चूर व्यक्ति स्वयं को दुनिया का बादशाह तक मान बैठता है, लेकिन इसका भी मजा जल्द ही किरकिरा होना शुरू हो जाता है, जब कोई दूसरा उससे बड़ी उपलब्धि के साथ सामने खड़ा हो जाता है। साथ ही इस नाम व उपलब्धि को बनाए रखने के लिए जितने पापड़ बेलने पड़ते हैं, विरोधियों की दुरभिसंधियों का सामना करना पड़ता है और समय के साथ इसका खिसकता आधार व्यक्ति को ऐसी स्थिति में ला देता है कि सांसारिक नाम-यश व महत्त्वाकांक्षाओं से जुड़ी खुशी गहरे विषाद एवं दु:ख का कारण बन जाती है और इनसे मोहभंग की स्थिति आ जाती है। जीवन का यथार्थ बोध ऐसे पलों में ही प्रकाशित होता है।

उसे प्रतीत होता है कि खुशियाँ कहीं बाहर सांसारिक सुख-उपलब्धियों एवं साधनों में नहीं, बल्कि अपने ही दृष्टिकोण एवं जेहन में कहीं अंदर निहित हैं। जो खुशियाँ बाहर सुख-भोगों तथा उपलब्धियाँ, नाम-यश में आभासित हो रही थीं, उनका वास्तविक स्रोत तो कहीं अंदर ही था। जब व्यक्ति शांत, स्थिर होकर भीतर उस स्रोत की ओर उन्मुख होता है, उसकी विधि को जानने-समझने लगता है, तो उसे जीवन में वास्तविक सुख का मर्म समझ आने लगता

है। परत-दर-परत उसके जीवन में वास्तविक सुख, संतुष्टि व खुशी की परतें खुलने लगती हैं। उसके साथ वह जीवन के वास्तविक अर्थ से भी परिचित होने लगता है।

ऐसे में उसे जीवन को सँवारने के लिए बताया गया नीति-मार्ग समझ आता है और तब नैतिकता एवं सात्त्विक जीवनशैली का स्वाभाविक रूप से जीवन में समावेश होने लगता है। धर्म-अध्यात्म सहज रूप से जीवन के अंग बनने लगते हैं। जीवन में यम-नियम को अपनाने का विज्ञान-विधान पल्ले पड़ता है और वह धारणा-ध्यान के महत्त्व को समझता है तथा जीवन में खुशी-प्रसन्नता के लिए अपने वास्तविक स्वरूप की ओर बढ़ चलता है, जिसके सार को शास्त्रों में सत्-चित्-आनंदस्वरूप बताया है। आनंद की इस सहज अवस्था में व्यक्ति की खुशी का वास्तविक स्रोत प्रकट होता है; बाहरी भटकन थमती है और व्यक्ति खुशी के राजमार्ग पर आगे बढ़ चलता है। ❑

उषाकाल का मनोरम समय था। उद्यान के एक कोने में मंदार के पुष्प अपने सौंदर्य के नशे में डूबे, मकरंद के वैभव-विलास के अहं में इतरा रहे थे। वहीं दूसरे कोने में चाँदनी का छोटा पौधा भी था। मंदार पुष्पों में से एक ने चाँदनी के पुष्प की ओर उपेक्षा भरी दृष्टि से देखते हुए कहा—"अरे! तुम्हारा भी कोई जीवन है। रुग्ण जैसी दिखाई देने वाली दुर्बल काया, रंगविहीन पंखड़ियाँ—लगता है विधाता ने तुम्हें किन्हीं पूर्वकर्मों का दंड दिया है। तनिक मेरी ओर देखो। हृष्ट-पुष्ट कलेवर के साथ रंग-बिरंगी रूप राशि और मकरंद की विपुल संपदा भी मुझे मिली है।" उसकी हेय दृष्टि से सकुचाई-सी चाँदनी चुपचाप सुनती रही, पर मन-ही-मन उसने संकल्प लिया—अपने को संघबद्ध कर माली को सौंप देने का। गोधूलि वेला में माली आया। चाँदनी के पुष्पों का मूक आमंत्रण उसे उनके पास ले गया। माली ने उन्हें अपनाया और माला के रूप में पिरो दिया।

उसी उद्यान के देव मंदिर में देव प्रतिमा के गले में वह माला अर्पित हो गई। चाँदनी के पुष्प प्रसन्न थे। चाँदनी के पुष्पों के सुखद-गौरवपूर्ण स्थान को देखकर मंदार पुष्पों का अहं गल गया। उन्होंने चाँदनी से इस स्थिति का रहस्य पूछा। चाँदनी ने उत्तर दिया—"बंधुवर! निरहंकारयुक्त सहयोग, सहकार, स्नेह का सद्भाव तथा अनुशासन ही इसका रहस्य है। हम सभी एक महान लक्ष्य को समर्पित थे। इसी कारण प्रेम के सूत्र में आबद्ध होना स्वीकार कर लिया।"

मंदार पुष्पों ने जिज्ञासा की—"क्या इसके लिए तुम्हें कुछ त्याग करना पड़ा?" चाँदनी ने कहा—"कुछ अधिक नहीं। मात्र स्वार्थ की संकीर्ण प्रवृत्ति, जिसे मेरे गुरु माली ने सुई से छेद-छेदकर अंतर्मन से निकाल दिया और उसकी जगह दिया प्रेम का सूत्र। बस, यही है गौरव प्राप्ति का रहस्य।" अब तो मंदार पुष्प भी माली की प्रतीक्षा में खड़े थे।

जल-संरक्षण का अभियान—हर व्यक्ति का अभियान बने

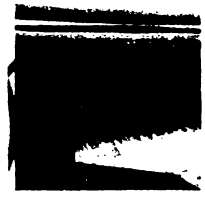

भारत दुनिया के सर्वाधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में शुमार होता है। यहाँ हर वर्ष लगभग 40 खरब क्यूबिक मीटर वर्षा-जल प्राप्त होता है। यद्यपि उस जल का केवल एक-तिहाई भाग ही उपयोग हो पाता है। सन् 1951 में प्रतिव्यक्ति पानी की उपलब्धता 2308 घनमीटर थी, जो सन् 2010 में 1707 घनमीटर रह गई और अनुमान है कि सन् 2050 में 158 करोड़ जनसंख्या के लिए 1235 घनमीटर रह जाएगी।

देश में सन् 2050 तक पानी का औसत खरच 1168 अरब घनमीटर पहुँच जाएगा, परंतु जल भंडारण क्षमता 1123 बिलियन घनमीटर ही होगी। उपलब्ध सतही जल का 70 प्रतिशत भाग अब बुरी तरह प्रदूषित भी हो चुका है। देश में लगभग 3000 छोटे-बड़े बाँध हैं, जिनकी जल संग्रहण क्षमता 162.2 अरब घनमीटर है; जबकि पानी का उपयोग लगभग 452 अरब घनमीटर है। इसका मतलब है कि हर वर्ष 289.8 अरब घनमीटर पानी धरती में से खींचकर काम में लिया जाता है।

देश में वार्षिक 1170 मिलीमीटर औसत वर्षा के बावजूद 74 जिलों का 511.2 लाख हैक्टेयर क्षेत्र स्थायी रूप से अकालग्रस्त माना जाता है। 12 राज्यों के 99 जिलों में पानी की स्थायी कमी रहती है। खेतों में पहुँचने के बाद 25 प्रतिशत पानी खेतों में खप जाता है। धोरों की पुरानी पद्धति से खेती करने के 75 प्रतिशत हिस्से का वाष्पीकरण हो जाता है। खुले जल संग्रह स्थलों, बाँध, तालाब आदि में भी 25 से 30 प्रतिशत पानी का वाष्पीकरण हो जाता है।

आने वाले वर्षों में जनसंख्या में बढ़ोत्तरी, औद्योगिक विकास, अन्न-उत्पादन में वृद्धि, रहन-सहन के स्तर एवं उपयोग में वृद्धि की वजह से पानी की जरूरत बढ़ेगी। 1960 के दशक से भूगर्भ-जल सिंचाई के लिए एक महत्त्वपूर्ण साधन बन गया है। 50 प्रतिशत से अधिक सिंचाई आज भूगर्भ-जल से होती है। औद्योगिक कार्य, घरों के उपयोग एवं पीने के पानी के लिए आपूर्ति भूगर्भ-जल से ही हो रही है।

हमारी यांत्रिक क्षमता ज्यों-ज्यों बढ़ती जा रही है, उसी अनुपात में भूगर्भ-जल को अधिक-से-अधिक खींचकर निकाला जा रहा है। आज देश में करीब 1 लाख से अधिक गाँवों में पीने के पानी की उचित व्यवस्था नहीं है। लगभग 4 करोड़ से अधिक लोगों को पीने का साफ पानी नहीं मिलता। विश्व की कुल जनसंख्या का 17 प्रतिशत भाग भारत में निवास करता है; जबकि बहती नदियों के पानी में औसतन 7 प्रतिशत जल भारत में है। जल ग्रहण क्षेत्रों में वन संरक्षण आवश्यक है।

जल संचयन के साथ-साथ जल के पुनः उपयोग, पर्यावरण सुधार व पानी की बरबादी को रोकने की महती आवश्यकता है। हमारे पूर्वज अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे, लेकिन गुणी और गहरी समझ वाले देश में पानी की खपत 442 अरब घनमीटर है, जो बढ़कर 2025 में मात्र खेती के लिए 1250 अरब घनमीटर, उद्योग, घरों में काम लेने व पीने के लिए 280 अरब घनमीटर यानी कुल मिलाकर 1530 अरब घनमीटर पानी की आवश्यकता होगी। इस प्रकार 390 अरब घनमीटर पानी की हर वर्ष कमी रहेगी। अतिरिक्त वर्षा-जल को इकट्ठा करने के लिए हजारों बाँध और तालाब अरबों रुपये खरच करके बनाने होंगे।

भूगर्भ-जल को संग्रह करने और उसे नियंत्रित उपयोग करने के अलावा हमारे पास और कोई विकल्प नहीं है। गाँव-गाँव में पानी के लिए पंचायत बननी चाहिए, जो पानी के संचय व उपयोग के प्रति जिम्मेदार हो। पानी की बचत के व्यावहारिक उपाय भी किए जाने चाहिए। कम पानी की माँग वाली कम समय लेने व जल्दी तैयार होने वाली फसलों को चुना जाना चाहिए। ड्रिप सिंचाई पद्धति खेतों में पानी की पर्याप्त बचत कर सकती है। उपलब्ध पानी को रिसाईकिल करने तथा संगृहीत पानी के वाष्पीकरण को रोकने के तरीकों को काम में लेने की आवश्यकता है।

गाँवों और शहरों में वर्षा-जल को रोकने और इकट्ठा करने के लिए लोगों को जागरूक करने, व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रयास करने, पानी को काम में लेने में मितव्ययिता की आदत डालने की जरूरत है। यदि इस ओर शीघ्र ध्यान नहीं दिया गया तो कुछ वर्षों में पीने के जल की अनुपलब्धता चरम पर होगी।

आज पूरे विश्व में कहा जा रहा है कि अगला विश्व युद्ध पानी के लिए होगा। उपभोक्तावाद के कारण प्रतिव्यक्ति पानी का उपयोग भी अधिकाधिक बढ़ रहा है। जंगलों के विनाश से पृथ्वी पर उतरे पानी को रोकने व उसके भंडारण में कमी आ रही है। बिजली पैदा करने के लिए भी बहुत अधिक पानी की आवश्यकता पड़ती है। 21 वीं सदी की विशाल जनसंख्या का पेट भरने के लिए हमें अन्न तो पैदा करना ही होगा। ऐसी कृषि-फसलों व उद्योगों को प्राथमिकता देना आवश्यक है, जिनके लिए पानी की खपत कम हो।

राजस्थान स्थायी रूप से पानी की कमी वाला राज्य है। देश में उपलब्ध जल में से प्रांत की जनसंख्या को 5 प्रतिशत जल की आवश्यकता है। माही, रावी, व्यास, चंबल, टिहरी आदि के पानी के बँटवारे के मामले अभी हल नहीं हुए हैं। देश में उपलब्ध जल का केवल 1 प्रतिशत जल ही राज्य को प्राप्त होता है। राज्य में औसत वर्षा-जल भी लगभग 57.51 सेमी० है। एकमात्र चंबल ही एक ऐसी नदी है, जो मौसमी नहीं है। राजस्थान के बड़े भू-भाग में जलस्तर पिछले 10 वर्षों में 5 से 10 मीटर तक नीचे चला गया है और कुल 237 ब्लॉकों में अधिकांश ब्लॉक पानी की उपलब्धता की दृष्टि से अति दोहन क्षेत्र के रूप में घोषित किए जा चुके हैं।

भूगर्भ-जल का बिना सोचे-समझे बढ़ता उपयोग चिंता का विषय बन रहा है। पानी की कमी के कारण खेती, काम-धंधे, मजदूरी, रोजगार के अवसर कम हो रहे हैं, जिसके कारण गाँवों के लोग पलायन कर शहरों में आने लगे हैं। गाँव खाली होते जा रहे हैं। राजस्थान में प्रतिवर्ष कहीं-न-कहीं अकाल व सूखे की स्थिति अवश्य पाई जाती है। रेगिस्तान सुनिश्चित गति से आगे बढ़ता जा रहा है। राजस्थान में पशुओं की संख्या भी अधिक है। लगभग 70 प्रतिशत लोगों का जीवन-निर्वाह आज कृषि व पशुपालन से है। सन् 1940 में 20 से 30 फीट की गहराई से पानी मिल जाता था, वहाँ आज 100 से 200 फीट यहाँ तक की 500 फीट की गहराई से पानी खींचना पड़ता है। जलस्तर नीचे जाने के कारण पानी में फ्लोराइड की मात्रा अधिक हो रही है।

राजस्थान की राजधानी अकेले जयपुर में 35 लाख से अधिक जनसंख्या में मात्र 28 लाख की आबादी ही जल नियोजन से जुड़ी है। लगभग 4 लाख पानी के कनेक्शन यहाँ हैं। पानी की माँग के मुकाबले 5 लाख लीटर पानी की कमी जयपुर में रहती है।

राजधानी जयपुर जैसे शहर में ट्यूबवेल, हैंडपंप, टैंकरों से पानी पहुँचाना पड़ता है। भूजलदोहन का स्तर लगभग 200 मीटर तक पहुँच गया है। कुछ समय पश्चात अकेला बीसलपुर जयपुर की प्यास नहीं बुझा सकेगा। अन्य नदी-नालों को बाँधकर पानी को रोककर पुराने जलस्रोतों में डालना चाहिए। जलस्तर को बढ़ाना ही चाहिए।

वर्षा के पानी को बचाने, अपव्यय को रोकने के कानूनी प्रावधानों से प्रत्येक 500 मीटर के निर्माण में वर्षा-जल को रोकने की व्यवस्था बनानी चाहिए। पुराने कुओं, बावड़ियों की मरम्मत कर उनके पानी को पीने योग्य बनाना चाहिए। जल संचय के कार्य करने वाली स्वैच्छिक संस्थाओं को प्रोत्साहित करना चाहिए।

देश में इतनी गंभीर जल-समस्या के होते हुए भी समाधान की दिशा में निष्ठापूर्वक प्रयास कम ही हुए हैं। इस प्रकार समय रहते तेज गति से परिणामदायक कार्य करने पर ही हम इस संकट से उबर सकते हैं। जल संकट का कुशलतापूर्वक सामना करने हेतु जल-संरक्षण पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। दीर्घकालीन आधार पर पानी की आवश्यकता और गुणवत्ता सुनिश्चित करना देश के लिए प्रमुख चुनौतियों में सम्मिलित है। इसलिए जल-संरक्षण एवं सुनियोजन को जनजाग्रति-अभियान बनाने की आवश्यकता है। ❑

विस्मरन्ति स्वरूपं ये त्यक्ता चोत्तरदायिता।
यैः पतन्ति तु पातस्य गर्ते ते निश्चित नराः॥ ***—प्रज्ञा पुराण (1/2/27)***

अर्थात जो आत्मस्वरूप को भूलते और उत्तरदायित्वों से विमुख होते हैं, वे पतन के गर्त में गिरते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी – 2

कामधेनु है गायत्री (उत्तरार्द्ध)

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव अपने साधनापरक उद्‌बोधन में गायत्री को कामधेनु घोषित करते हुए कहते हैं कि माँ गायत्री की साधना में इतनी शक्ति है कि उनके माध्यम से इस संसार की समस्त विभूतियों का अर्जन संभव है। इसीलिए माँ गायत्री कामधेनु सदृश हैं। पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि माँ गायत्री से ऐसे दैवी अनुग्रह को प्राप्त करने के लिए प्रचंड पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। जो कर्मयोग को आधार बनाकर अपने जीवन को जीते हैं एवं सदा ईश्वरीय शक्ति को समर्पित होकर जीवन जीते हैं, उन्हें माँ गायत्री के अनुग्रह से संपत्ति, प्रतिष्ठा जैसी लौकिक विभूतियाँ तो प्राप्त होती ही हैं—साथ ही उन्हें वे सारी आध्यात्मिक संपदाएँ भी हस्तगत होती हैं, जो साधनात्मक पुरुषार्थ की चरम परिणति कही गई हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

इज्जत की कीमत

मित्रो! पिछले महीने अखण्ड ज्योति में एक लेख छपा था। एक कंपनी थी, वह दिवालिया हो गई थी। मालिक ने अपने नौकरों से कहा—"दोस्तो! अब हमारे ऊपर इतना कर्ज हो गया है कि हम अपनी फैक्टरी को चला नहीं सकते। अत: अब हम इसे बंद करने जा रहे हैं। अब आप लोगों का जो पैसा है, उसे हम चुकाना चाहते हैं और आप लोगों की छुट्टी करना चाहते हैं।" उस कंपनी में लोग 70-80 वर्ष से काम कर रहे थे।

उन्होंने कहा कि आप क्यों बंद करना चाहते हैं? क्योंकि बैंकों ने हमको पैसा देना बंद कर दिया है और हमारे पास पैसे खतम हो गए हैं। दूसरे दिन उस कंपनी मालिक ने देखा कि जितने भी नौकर थे, सब अपनी-अपनी पासबुक लेकर के लाइन में खड़े थे। उन्होंने उस कंपनी वाले से यह कहा कि आप हमारी पासबुकें ले लें और जो कुछ भी हमारे पास पैसा है, यह हमने आपकी कंपनी से ही कमाया है। इस पैसे को आप अपने लिए खरच कर लें और कंपनी को बंद न करें।

मित्रो! उस कंपनी में 6000 मजदूर काम करते थे। 6000 पासबुकें आ गईं। 6000 पासबुकों में ढेरों पैसे थे। उन ढेर सारे पैसों को लेकर के कंपनी का मैनेजर बैंक मैनेजर के पास गया और बोला कि आप इन 6000 पासबुकों के साथ में जो विड्रॉल फॉर्म लगे हुए हैं, आप इनका पैसा कैश कर लीजिए और अपना पैसा चुका लीजिए तथा हमारी कंपनी बंद मत कीजिए। बैंक के ऑफीसरों की बैठक हुई। उन्होंने कहा कि जिस कंपनी ने इतनी इज्जत कमाई है, जिसका प्रत्येक कर्मचारी अपनी पासबुक उसके हवाले कर रहा है, ऐसी कंपनी के फेल होने की कोई उम्मीद नहीं है। इसलिए बोर्ड ऑफ डायरेक्टर ने दोबारा यह फैसला लिया कि हम इस कंपनी को फिर से लोन देना शुरू करेंगे। बैंक से पुन: लोन मिला और कंपनी का काम फिर से चलना शुरू हुआ एवं कंपनी अपनी पहली जैसी स्थिति में आ गई।

मित्रो! मैं यही कहता हूँ कि जहाँ आपको इज्जत मिलती है, वहाँ सहयोग भी मिलता है। आपने तो किसी की इज्जत ही नहीं पाई। न नौकरी में इज्जत पाई, न बाप की

इज्जत पाई, न माँ की इज्जत पाई, न भाई की इज्जत पाई। बताइए! पाई इज्जत किसी की, आपको किसी की इज्जत नहीं मिली। किसी को आपसे कोई फरक नहीं पड़ता। परलोक की बात मैं नहीं कहता, स्वर्ग की बात मैं नहीं जानता, अगले जन्मों की बात मैं नहीं कहता। मैं तो इसी जन्म की बात कहता हूँ। मैं जानता हूँ कि आपको सहयोग की जरूरत है।

आप में से कोई भी व्यक्ति इज्जत चाहता है, तो गायत्री मंत्र की उपासना करना प्रारंभ कीजिए। नहीं साहब! उपासना तो हम करते चले आ रहे हैं। जो उपासना आप करते चले आ रहे हैं, उसमें तो बहुत-सी गलतियाँ हैं, बेहद कमियाँ हैं। आप उनको समझ ही नहीं पाए हैं और किसी ने आपको समझाया भी नहीं है। आप समझाएँगे? हाँ, मैं आपको समझाने के लिए ही आया हूँ। इसलिए समझाने के लिए आया हूँ कि चलते-चलाते जो मैंने सत्तर वर्ष में सीखा है और जो मेरे बॉस ने, बुजुर्गों ने सिखाया है; हमसे पहले भी अनेक ऋषियों ने सीखा था और समाज को फायदा पहुँचाया था, उसकी जानकारी आपको भी मिलनी चाहिए।

गायत्री-साधना से संपत्ति की प्राप्ति

मित्रो! हमने इज्जत पाई है और हमने क्या पाया है? सांसारिक जीव क्या चाहते हैं? सांसारिक जीव पैसा चाहते हैं। पैसा आपके पास है? हम आपको क्या हवाला दें कि हमारे पास पैसा है कि नहीं है। आप हमारे मकान देख लीजिए। पैसा वाला होता है, तो कैसे मालूम पड़ता है, बताइए? किसी के यहाँ लड़की या लड़के की शादी के लिए बात करने जाते हैं, तो यह देखते हैं कि अरे! यह लड़की तो लाला जी की है। बड़े मालदार मालूम पड़ते हैं। कैसे? बाहर से ही मालूम पड़ जाता है। आप हमारी कोठी देख लीजिए, हवेली देख लीजिए।

अभी-अभी हमने एक नगर बसाया है। आपका गायत्री नगर तो अलग है। एक छोटा-सा नगर हमने भी बसा रखा है, जिसमें एक सौ फ्लैट बने हुए हैं। आपकी तरह जिन्होंने अपने क्वार्टर बनाए हैं, उन्होंने पैसे दिए हैं। हमारे यहाँ एक ब्रह्मवर्चस रिसर्च इन्स्टीट्यूट है, आप देखिए न। हमारे बारे में तो हमारी संस्था ने भी पैसे दिए हैं। शांतिकुंज को देखिए, गायत्री तपोभूमि को देखिए, युग निर्माण योजना को देखिए, अखण्ड ज्योति संस्थान को देखिए, आँवलखेड़ा को देखिए। इन पाँच इमारतों को देखिए। इनका एस्टीमेट लगाइए। आज के जमाने में ये संस्थान लगभग करोड़ों की इमारतें हैं।

गुरुजी! आपके पास माल कितना है? बेटे, माल की बात मैं नहीं बताना चाहता। आप में से कोई इनकम टैक्स वाला बैठा हो तो? इसलिए बाकी बात नहीं बताना चाहता हूँ। नहीं साहब! नंबर दो की बात बताइए। बेटे, हमारे चौके

औचित्य इस बात में है कि हर व्यक्ति औसत नागरिक स्तर का जीवन जिए। 'सादा जीवन उच्च विचार' की नीति अपनाए। न्यायोचित पसीने की कमाई पर संतोष करे। चोरी, बदमाशी का इस हेतु प्रयोग न करे। यदि अपने खरच से बच जाता है तो उसे बिना रोके अवांछनीयताओं जैसी अव्यवस्थाओं से निपटने के लिए खरच कर दे। सत्प्रवृत्तियों के संवर्द्धन की व्यवस्था न जुट पाने से ही श्रेष्ठता और प्रगतिशीलता की पौध सूख रही है। उसे सींचने के लिए जो कुछ बन सकता हो, करें। यही सतयुगी परंपरा रही है, यही किया भी जाना चाहिए। — *परमपूज्य गुरुदेव*

में पाँच सौ आदमी नित्य भोजन करते हैं। पाँच सौ से कम आदमी कभी भोजन नहीं करते और कितने खरचे हैं? हम कितने खरचे गिनाएँ। आपके पास पैसे हैं? हाँ, हमारे पास पैसा बहुत है। अभी हम शक्तिपीठें बनाने पर आमादा हो गए हैं। 1000 शक्तिपीठें अंडर कन्स्ट्रक्शन चल रही हैं, जिनकी लागत एक लाख रुपये है। वे छोटी मोटरगाड़ियाँ ले रहे हैं, ताकि देहातों में, गाँवों में विस्तार कर सकें। हर गाँव में छोटी शक्तिपीठ बना रहे हैं, जिनकी लागत बीस हजार

रुपये है। चौबीस हजार इमारतों का बनाने का प्लान किया है। उनमें कितना रुपया लगेगा? मैं समझता हूँ कि पचास करोड़ रुपये लगेंगे। पैसा आपको दिखाई नहीं पड़ता। पैसा आदमी की आँखों में से चमकता है। पैसा आपके चेहरे से चमकता है। आपने हमारा चेहरा देखा है।

कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्

मित्रो! और क्या है हमारे पास? हमारे पास है—'कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।' एक और चीज है। मैं चाहता हूँ कि वह आपके पास भी हो। उस चीज को पाकर के आप निहाल हो जाएँ। वह क्या चीज है? वह है—अपने आप को जानना, तैरना। अपने आप को नदी की धारा में से पार करना। कैसी भी नदी हो, मल्लाह अपने आप को पार कर लेता है। मल्लाह की ताकत यह है कि अपनी नाव को बल्लियों के सहारे घसीट करके इस पार से उस पार ले जाता है। मल्लाह की ताकत वह है, जो अपनी नाव में पचास आदमियों को बैठाकर बहती हुई नदी की तेज धारा में से इधर-से-उधर ले जाता है। उधर-से-इधर ले आता है। यह मल्लाह की ताकत है।

मित्रो! मल्लाह की ताकत से क्या मतलब है? मैं 'ब्रह्मवर्चस्' की बात कह रहा हूँ। आपका क्या ख्याल है? आप बताना कि हम जहाँ भी गए हैं, वहाँ कितने आदमी आए हैं। अभी भी हम 10-15 जगह होकर के आए हैं। अभी महीना भी नहीं पूरा हो पाया। जहाँ कहीं भी हम गए हैं, लाखों की तादाद में लोग आए हैं। जैसे कि हम सबसे पहले हावड़ा गए थे। वहाँ की रिपोर्ट थी कि तीन दिन में हमने पच्चीस हजार लोगों को खाना खिलाया था।

जहाँ कहीं की भी रिपोर्ट मिली है, जहाँ कहीं कंट्रोल आ गए, वहाँ तो मैं नहीं जानता, लेकिन और कहीं भी कंट्रोल में नहीं आए। खाने-पीने से लेकर के ठहरने तक लोग व्याख्यान सुनने आते हैं। नहीं, व्याख्यान सुनने नहीं आते। फिर किसके लिए आते हैं? अपनी मुसीबतों की बात लेकर के आते हैं, कठिनाइयों की बात लेकर के आते हैं। दुःख-दरद की बात लेकर के आते हैं और सहायता प्राप्त करने की अपेक्षा लेकर के आते हैं। आप सहायता करते हैं? हाँ, हमने सहायता की है।

मित्रो! हमने लाखों आदमियों की आँखों में से बहते हुए आँसुओं को पोंछा है और आदमियों के चेहरे पर दुःख-दरद की जो गमगीनी, निराशा एवं उदासी छाई हुई थी और न जाने क्या-क्या छाई हुई थी, हमने उनसे कान में जो बात कही है, तो उनका चेहरा हँसता हुआ दिखाई पड़ा है। हमने रोते हुओं को हँसाया है और बरसते हुए आँसुओं को पोंछने की कोशिश की है। हमारे पास बहुत सारी चीजें हैं—जिनसे हम गिरे हुओं को उठाने में, मुसीबत के समय में, मुसीबत से निकालने में हमेशा मदद करते रहे हैं।

लोगों का यह ख्याल है कि आचार्य जी के दरवाजे पर जो कोई गया है, वह खाली हाथ नहीं लौटा है। हमें यह नहीं मालूम है कि यह कहाँ तक सही है और कहाँ तक गलत है, पर हमने कोशिश यही की है। राजा कर्ण सवा मन सोना कमाते थे और सारा-का-सारा दान कर देते थे हमने सुना है कि प्राचीनकाल के ऋषि भी ऐसे ही थे, अपनी तपश्चर्या से जो कमाते थे उसे लोगों के लिए खरच कर देते थे। हमने सुना है कि भगवान बुद्ध जब मरने को हुए, तब लोगों ने उनसे पूछा—"क्या आप मुक्ति में जाने वाले हैं? स्वर्ग में जाने वाले हैं?" तब उन्होंने कहा—"नहीं, ऐसी बात नहीं है। हम स्वर्ग और मुक्ति में नहीं जा सकते; क्योंकि जब तक संसार में एक भी आदमी बंधन में बँधा हुआ है, तब तक हम मुक्ति में जाने को रजामंद नहीं हैं।

कौन है संत?

मित्रो! चार सौ करोड़ इनसान में से जब सब मुक्ति को चले जाएँगे, तब सबसे पीछे वाले इनसान हम होंगे, जो सबको मुक्ति में भेजने के बाद में अपने बारे में विचार करेंगे कि हमको भी मुक्ति पानी चाहिए। हमने सिद्धियों की बाबत विचार नहीं किया है। हमने शांति की बाबत विचार नहीं किया है। हमने मुक्ति की बाबत विचार नहीं किया है। हमने स्वर्ग की बाबत विचार नहीं किया है।

हमने एक ही बात की बाबत विचार किया है कि हम दूसरों की मुसीबतें, दूसरों की तकलीफें, दूसरों की कठिनाइयों में क्या कुछ मदद कर सकते हैं? अगर कर सकते हैं, तो हमने भरसक की है और साथ में एक और भी बात की कोशिश की है कि कहीं से जितना हमारा खरच हुआ है, उससे ज्यादा कहीं से आता हुआ चला जाता है। गंगोत्तरी कभी आपने देखी नहीं है, जहाँ से गंगा निकलती है। गोमुख 6 फुट चौड़ा, 6 फुट लंबा सुराख है, जहाँ से गंगा का पानी निकलता है।

मित्रो! गंगा जब गोमुख से निकली तो यह विश्वास लेकर चली थी कि हम खेतों को पानी देंगे, खलिहानों को

पानी देंगे, मनुष्यों को पानी पिलाएँगे और मरे हुओं को वैकुंठ ले जाएँगे। बाग-बगीचों को पानी देंगे। रास्ते में पड़ने वाली नदियों ने कहा—गंगा! आप इस नेक इरादे से चली हैं, तो हम भी आपका सहयोग करेंगे। गंगा बढ़ती चली गई हैं।

गंगा में हिमालय की अनेक नदियों सहित यमुना भी शामिल हुई हैं। गंगा में सरयू शामिल हुई हैं। गंगा में घाघरा शामिल हुई हैं और बंगाल में जाते-जाते गंगा जी की सौ धाराएँ हो गईं। बिहार में जाते-जाते सोनपुर में दो मील चौड़ी हो गईं। पटना में तो पानी के जहाज चलते हैं और वहाँ से आगे जैसा कि आम लोगों का ख्याल था कि गंगा सूख जाएँगी, लेकिन गंगा सूखी नहीं हैं। आप सूखे हैं? नहीं, हम सूखे नहीं हैं। छोटी-सी हमारी हस्ती, छोटा-सा हमारा व्यक्तित्व है, जिसमें हमने यह फर्ज और यह कर्त्तव्य इस नीयत से अपने कंधे पर ओढ़ा है कि हम एक संत के तरीके से जिएँगे।

मित्रो! संत उसे कहते हैं, जो दूसरों की मुसीबतों को देखकर पिघल जाता है। मक्खन उसे कहते हैं, जो अपने पर मुसीबत आती है, तो पिघल जाता है और संत उसे कहते हैं, जो दूसरों की मुसीबत को देखकर पिघल जाता है। हमने दूसरों को मुसीबत से निकालने के लिए पिघलना सीखा है और पिघल करके बहना सीखा है, गलना सीखा है; लेकिन हम उत्सुकता की बाबत जानते हैं। इससे हमको यकीन दिलाया हुआ है। हिमालय ने गंगा को यकीन दिलाया हुआ है कि बेटी! तू पानी फैलाने के लिए, प्यास बुझाने के लिए चली है, तो हम विश्वास दिलाते हैं कि हिमालय जब तक जिंदा है, बरफ जब तक जिंदा है, तब तक तेरे पानी में कमी नहीं हो सकती। देखिए आज तक कमी नहीं हुई है।

गायत्री-साधना से ब्रह्मवर्चस्

मित्रो! जिसका नाम है—'ब्रह्मवर्चस्', जिसको ब्रह्मतेज कहते हैं। यह हमने उसी से पाया है, जिसको हम गायत्री मंत्र की प्रैक्टिस कहते हैं। थ्योरी उसे कहते हैं—जिससे कि हमको आत्मसंतोष मिलता है। थ्योरी उसे कहते हैं—जिससे कि कर्म करने की हमको प्रेरणा मिलती है, जिससे कि हमको अपने विचारों पर, भावनाओं पर और क्रियाओं पर अंकुश करने के लिए पूरी-की-पूरी सामर्थ्य मिलती है।

ब्रह्मविद्या उसे कहते हैं—जिसमें एक मैग्नेट पैदा होता है, जो देवताओं का अनुग्रह खींच करके नजदीक ले आता है। पेड़ों के अंदर एक मैग्नेट होता है, जो बादलों को पकड़ करके नीचे ले आता है। आदमी के भीतर एक मैग्नेट होता है, जो देवताओं के अनुग्रह, देवताओं के वरदान, देवताओं के आशीर्वाद को खींच करके जमीन पर ले आता है। देवता अपनी मरजी से नहीं देते। आपका क्या ख्याल है कि वे नारियल के बदले देते हैं, धूपबत्ती के बदले देते हैं। अक्षत-

संत एकनाथ काशी से गंगाजल लेकर रामेश्वरम् की तीर्थयात्रा पर निकले। मार्ग में उन्हें एक बीमार, मृतप्राय, वृद्ध सज्जन दिखाई पड़े, जो प्यास से बेहाल थे। संत एकनाथ ने तुरंत अपने साथ लाया गंगाजल उस व्यक्ति को पिला दिया। संत के साथी यह दृश्य देख उन पर बिगड़ने लगे कि अब उनकी तीर्थयात्रा का मुख्य उद्देश्य तो भ्रष्ट हो गया और उन्हें गंगाजल लेने वापस लौटना पड़ेगा।

संत एकनाथ बोले—"अरे भाइयो! जरा यह तो देखो कि मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ, जो स्वयं महादेव ने इस रूप में आकर मेरा अभिषेक स्वीकार कर लिया। अब मुझे रामेश्वरम् तक की यात्रा नहीं करनी पड़ेगी।

फूल के बदले देते हैं और जबान की बकवास के बदले में देते हैं। आपका यह ख्याल गलत है।

अपने भीतर का चुंबक

मित्रो! सही ख्याल क्या है? देवता एक मैग्नेट के दबाव से लोगों की सहायता करने के लिए और वरदान देने के लिए मजबूर होते हैं। हमारे देवता हमसे मजबूर हुए। हमारे भीतर के देवता भीतर से प्रकट हुए हैं और बाहर के देवता बाहर से प्रकट हुए हैं। नदियाँ दो तरह की पाई जाती

हैं। एक नदियाँ वे होती हैं, जो ऊपर पहाड़ से झरने झरते हैं और नदियाँ बहती हैं। एक नदियाँ ऐसी होती हैं कि जैसे नर्मदा ऊपर से नहीं निकलती, वरन जमीन से फूटती है।

जमीन में से संपदाएँ फूटती हैं और ऊपर से बरसती हैं। ऊपर से भी बरसती हैं और नीचे से भी फूटती हैं। हमारे भीतर से भी अतींद्रिय क्षमताएँ फूटी हैं और दैवी अनुग्रह बरसा है; क्योंकि एक मैग्नेट हमारे भीतर है। यह मैग्नेट भीतर की सोई चीजों को भी हिला देता है, जगा देता है और एक मैग्नेट है जो ऊपर की चीजों को, देवताओं को भी खींच करके नीचे ले आता है। यह मैग्नेट कहाँ से पाया? वहाँ से पाया, जिसके लिए हमने अपना जीवन समर्पित किया है। जहाँ के लिए हमारे बॉस ने हमको शिक्षण दिया है। वह है—गायत्री की फिलॉसफी और गायत्री की शिक्षा, जिसका हम उद्घाटन करने के लिए आए हैं।

मित्रो! इसके लिए यहाँ एक शक्तिपीठ बनाया जा रहा है। इसके लिए हमने अपना जीवन समर्पित किया है, जिसकी बाबत सुनने के लिए आप सब लोग यहाँ आए हैं और जिसकी बाबत हम बहुत कुछ कहना चाहते हैं। हाँ साहब! आपने किस तरीके से पाया, बताइए। हाँ, रहस्य बताने के लिए हम आए हैं; क्योंकि रहस्य बताऊँगा नहीं, तो एक बड़ी कमी रह जाएगी। हमने लोगों को विश्वास दिलाया है।

विवेकानंद ने लोगों को विश्वास दिलाया था कि भारतीय संस्कृति के बारे में निराश होने की जरूरत नहीं है। इसमें बहुत सारी जानदार चीजें हैं। हमने लोगों को यह विश्वास दिलाया है कि अध्यात्म के बारे में आपको निराश होने की, नाउम्मीद होने की जरूरत नहीं है। इसमें भरपूर जानदार चीजें हैं। हमने अपने आप को सबूत के रूप में पेश किया है। आपको यकीन न हो, आपको विश्वास न होता हो, तो आप हमारा इम्तिहान ले सकते हैं और हमारे पीछे एक आयोग बैठा सकते हैं कि आदमी की बाबत जो अफवाहें हैं, इस आदमी के बारे में लोगों के जो खयालात हैं, वे कहाँ तक सही हैं। कहाँ तक इस मामले की तलाश की जाएगी?

मित्रो! हमारे पास लाखों आदमी आते हैं। हर आदमी के पीछे आप इन्क्वायरी कमेटी बैठाइए कि इसका जो ख्याल था, जिस मुसीबत को लेकर के आया था। जो इसको कहा गया था, जो इसको दिया गया था, वह पूरा हुआ कि नहीं हुआ? आप पता कीजिए। आप पता क्यों नहीं लगाते? आप इनकार कर सकते हैं। हमने लोगों की नास्तिकता को आध्यात्मिकता की ओर मोड़ने की कोशिश की है और लोगों से यह कहा है कि आपको अविश्वास करने की जरूरत नहीं है। आप विश्वास कीजिए।

विश्वास करने में अगर आपको गवाह की जरूरत हो, सबूत की जरूरत हो, प्रमाण की जरूरत हो तो आप हमें गवाह के तरीके से, सबूत के तरीके से, प्रमाण के तरीके से इस्तेमाल कीजिए। आपके अंदर क्या बात है? हमारे अंदर एक बात है कि यदि आप पूजा करते हैं, भजन करते हैं, यह सबको मालूम है कि गायत्री मंत्र की विधि हमने आप सबको सिखा दी है। पूजा की विधि के बारे में आप सब आदमी जानकार हैं, लेकिन दो चीजों के बारे में जानकार नहीं हैं। एक बात यह है कि बीज बोना आपने जाना है, लेकिन खाद और पानी लगाना नहीं जानते। खाद और पानी न लगाने की वजह से उपासना का बीज सूख गया। गवर्नमेंट हर साल वृक्षारोपण कराती है, लेकिन सारे-के-सारे पेड़-पौधे सूख जाते हैं; क्योंकि खाद-पानी का इंतजाम नहीं होता।

उपासना में खाद-पानी

मित्रो! हमारी उपासना में खाद और पानी का इस्तेमाल हुआ है। खाद और पानी का इस्तेमाल हमने कैसे किया? वही हमें बताना था। जब मैं चला जाऊँगा, तब फिर लोगों के सामने वही परिस्थितियाँ आ जाएँगी, माँगने वाले फिर आ जाएँगे। पीछे देगा कौन? फिर माँगने वाले तो अभी हैं, फिर धर्म को देगा कौन? भगवान देंगे। नहीं, भगवान एक नियम हैं, भगवान एक कायदा हैं। भगवान एक कानून हैं, भगवान एक मर्यादा हैं। भगवान के यहाँ अँधेरगर्दी नहीं चल सकती। देवी के यहाँ कोई अंधेरगर्दी नहीं है। आपके यहाँ कोई अंधेरगर्दी नहीं है। आप ठीक से इस्तेमाल कीजिए और ठीक वरदान पाइए। गलत इस्तेमाल कीजिए और गलत परिणाम पाइए।

भगवान की परंपरा वही है। यह देवपुरुषों को मदद की परंपरा है। यह भक्तों की परंपरा है। संत एकदूसरे को दिया करते हैं। संत विचरते हैं। संत दूसरों की सहायता करते हैं। भगवान का एक नाम वह भी है, जिसको सुनकर आपको पसीना आ जाएगा।

भगवान का एक नाम है—रुद्र। भगवान सोमनाथ भी हैं। भगवान केदारनाथ भी हैं। भगवान कसाई भी हैं। भगवान

निष्ठुर भी हैं; क्योंकि भगवान एक कायदा हैं, एक कानून हैं, फिर एक बार समझिए। भगवान से भक्तवत्सलता की उम्मीदें मत कीजिए। जो भक्तवत्सलता की उम्मीद करते हैं, तो आप उसकी नाखुशी से हंटर खाने की भी उम्मीद कीजिए।

नहीं साहब! भगवान तो दया करता है। गलत बात है। भगवान दया कैसे करता है? मरघट में जाइए, श्मशान में जाइए। अस्पताल में जाइए न आप, बीमारों को देखिए न आप। भगवान दयालु हैं, भक्तवत्सल हैं। किसने कहा आपसे कि भगवान भक्तवत्सल हैं। वह कामना, मनोकामना पूरी करता है, तो हर साल विद्यार्थी आत्महत्या कर लेते हैं, वो कहाँ जाएँगे? आपको इन बेकार की बातों से दूर रहना चाहिए। भगवान दयालु नहीं हो सकते। भगवान निर्दयी भी नहीं हो सकते।

भगवान एक कायदा हैं। यह कौन कहता है? संत लोग कहते हैं। संतों का यह फर्ज है, क्योंकि संत की सेवा, संत की गरिमा तभी जिंदा रह सकती है, जब वह दूसरों को दें। देने वाले संत के लिए मैं यह पूछता हूँ कि आप में से कौन देगा? जब हम नहीं रहेंगे। सब माँगते ही चले जाएँगे, तो देने का जिम्मा कौन लेगा? फिर भगवान के प्रति, अध्यात्म के प्रति अनास्था का क्रम चालू हो जाएगा। इसलिए मैं आपसे चाहता था कि आप ग्वालियर निवासियों को वह राज बता करके चले जाएँ, जिससे कि अध्यात्म फायदेमंद हो सकता है। मैं वही बताने के लिए आया हूँ, तो बताइए। बात जरा लंबी है। इसलिए इस लंबी बात को, कि भजन में आप किस तरीके से खाद दे सकते हैं, पानी दे सकते हैं। यह बात मैं बाद में बताऊँगा; ताकि आपका जप ऐसा ही, शानदार हो जाए, जैसा कि हमारा जप शानदार हो गया।

मित्रो! गायत्री कामधेनु है। गायत्री शक्ति का भंडार है। गायत्री विज्ञान है, गायत्री ज्ञान है। दोनों-के-दोनों लाभ उसमें छिपे पड़े हैं। उसका उपयोग आप किस तरीके से करेंगे, किस तरीके से उससे लाभान्वित होंगे, इसकी चर्चा का आप इंतजार कीजिए। आज की बात तो हम यहीं समाप्त कर देते हैं। गायत्री महान है। गायत्री पारस है। गायत्री अमृत है। गायत्री कल्पवृक्ष है। गायत्री ऋषियों की धरोहर है। गायत्री कामधेनु है। गायत्री वह सब कुछ है, जिसमें भारतीय संस्कृति और भारतीय सभ्यता के सारे विज्ञान छिपे हुए हैं। इसमें हमारा उज्ज्वल भविष्य छिपा हुआ है और जिसमें आपकी सुख-शांति के सारे आधार छिपे हुए हैं; लेकिन इसको इस्तेमाल कैसे करेंगे? इसको जानने के लिए आपको कल का इंतजार करना चाहिए। आज की बात हम यहीं समाप्त करते हैं।

॥ ॐशांतिः ॥

भारतवर्ष सदा से ज्ञान का आगार रहा है। पश्चिम जगत में 17वीं सदी तक वैज्ञानिकों में यह मान्यता थी कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा नहीं करती, वरन सूर्य पृथ्वी के चारों ओर भ्रमण करता है और विपरीत मान्यता के कारण ही वैज्ञानिक गैलीलियो को मृत्युदंड स्वीकार करना पड़ा, परंतु भारतीय ऋषियों ने आदिकाल से ही इस सत्य का उद्घाटन आर्ष साहित्य में कर दिया था, जिसको सिद्ध करने में आधुनिक वैज्ञानिकों को इतना समय लगा।

तैत्तिरीय संहिता (3/4/10) में ऋषि कहते हैं—"मित्रोदाधार पृथिवीमुत-द्याम्। मित्रः कृष्टी।" अर्थात सूर्य मित्र की भाँति पृथ्वी की रक्षा करता है और सौरमंडल के केंद्र में स्थापित होता है। आज आवश्यकता अपने चिर पुरातन ज्ञान के पुनर्स्थापन की है।

विश्वविद्यालय परिसर से—193

श्रीरामचरितमानस में संत-असंत की महिमा

विश्वविद्यालय परिसर में चैत्र नवरात्र के पावन अवसर पर कुलाधिपति डॉ0 प्रणव पण्ड्या द्वारा नौ दिनों का संध्याकालीन विशेष उद्बोधन दिया गया, जिसका विषय था—**श्रीरामचरितमानस में संत एवं असंत का स्वभाव (साधुता-दुष्टता के गुण, धर्म व लक्षण के संदर्भ में)।**

श्रीरामचरितमानस में कई ऐसे व्यक्तित्व हैं, जो संत प्रकृति के हैं और कई ऐसे व्यक्तित्व भी हैं, जो असंत प्रकृति के हैं। जैसे—अयोध्या में प्राय: सभी व्यक्तियों में संत व्यक्तित्व के गुण भी देखने को मिलते हैं, लेकिन वहाँ पर मंथरा एक ऐसा व्यक्तित्व है, जिसमें असंत व्यक्तित्व के गुण देखने को मिलते हैं और वह अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से कैकेयी के व्यक्तित्व को भी दूषित कर देती है, जिसके कारण महाराज दशरथ से कैकेयी को दो वचन मिलते हैं, पहला—श्रीरामचंद्र जी के लिए चौदह वर्ष का वनवास और दूसरा—कैकेयी पुत्र भरत को अयोध्या का राज्य।

इसी तरह लंका में प्राय: सभी व्यक्तियों में असंत व्यक्तित्व के गुण मौजूद हैं, केवल कुछ लोगों जैसे—विभीषण, त्रिजटा, महारानी मंदोदरी आदि में संत व्यक्तित्व के गुण देखने को मिलते हैं। कैसे जाना जाए कि किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व संत प्रकृति का है या असंत प्रकृति का? बाहरी तौर से तो सभी के शारीरिक आकार-प्रकार में समानता होती है, चेहरे व शरीर की बनावट में किंचित भिन्नता होने से सभी एकदूसरे से अलग प्रतीत होते हैं और इसी विभिन्नता से सभी की पहचान होती है, लेकिन इस रूप की विभिन्नता से व्यक्तित्व की पहचान नहीं होती; क्योंकि एक सुंदर व शील दिखने वाला व्यक्ति भी असंत प्रकृति का हो सकता है और एक कुरूप दिखने वाला व्यक्ति भी संत प्रकृति का हो सकता है।

श्रीरामचरितमानस के सात प्रकरणों में से हर प्रकरण में संत व असंत व्यक्ति के बारे में चौपाइयाँ व दोहे कहे गए हैं, जिनके बारे में गहराई से समझने पर संत व असंत प्रकृति के भेद के बारे में पता चलता है। चैत्र नवरात्र के इन नौ दिनों में एक-एक प्रकरण में मौजूद संत व असंत व्यक्तित्व के स्वभाव के बारे में गहराई से विस्तारपूर्वक बताया गया।

(1) प्रथम दिवस—इस दिन श्रीरामचरितमानस में संत व असंत के स्वभाव की भूमिका बताने के साथ बालकांड में संत व असंत के स्वभाव का वर्णन किया है। संतों के चरित्र को बताते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं संतों को प्रणाम करता हूँ, जिनके चित्त में समता है, जिनका न कोई मित्र है और न शत्रु। जैसे—अंजलि में रखे हुए सुंदर फूल दोनों ही हाथों को समान रूप से सुगंधित करते हैं, वैसे ही संत व्यक्ति, शत्रु और मित्र दोनों का ही समान रूप से कल्याण करते हैं।

संत सरल हृदय और जगत् के हितकारी होते हैं; जबकि असंत व्यक्तियों के बारे में गोस्वामी जी कहते हैं कि मैं सच्चे भाव से दुष्टों को प्रणाम करता हूँ, जो बिना ही प्रयोजन, अपना हित करने वाले के भी प्रतिकूल आचरण करते हैं। दूसरों के हित की हानि ही जिनकी दृष्टि में लाभ है, जिनको दूसरों के उजड़ने में हर्ष और बसने में विषाद होता है।

(2) द्वितीय दिवस—इस दिन भी बालकांड में संत व असंत के स्वभाव का वर्णन किया गया। बालकांड में गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि संत एवं असंत व्यक्ति दोनों ही इस संसार को दु:ख देने वाले हैं, परंतु उनके दु:ख देने में कुछ अंतर है। वह अंतर यह है कि संतों का बिछड़ना मरने के समान दु:खदायी होता है; जबकि असंतों का मिलना दारुण दु:ख देने वाला होता है यानी मरने के समय दु:खद व पीड़ादायक होता है। संत और असंत प्रकृति के व्यक्ति दोनों ही इस संसार में पैदा होते हैं, लेकिन कमल और जोंक की तरह उनके गुण अलग-अलग होते हैं। जिस तरह कमल दर्शन और स्पर्श से सुख देता है, सुगंध से सुवासित होता है, वहीं जोंक शरीर का स्पर्श पाते ही रक्त चूसने लगती है, उसी तरह संत और असंत व्यक्ति का व्यवहार होता है।

इस संसार में जो वेशधारी ठग हैं, उन्हें भी साधु-संत का वेश बनाए देखकर यह जगत् पूजता है, लेकिन अंत तक उनका यह कपट नहीं निभता, उदाहरण के लिए

कालनेमि ने ऋषि का वेश बनाया और हनुमान जी के साथ छल किया, रावण ने साधु का वेश बनाया और सीता जी के साथ छल किया और राहु ने देवता का रूप बनाया और देवताओं के साथ छल किया, लेकिन इन तीनों को इस छल का भयंकर दंड भुगतना पड़ा; जबकि बुरा वेश बना लेने पर भी साधु व्यक्ति का सम्मान ही होता है, जैसे जांबवान रीछ शरीरधारी होने पर भी सम्मान के पात्र हैं और हनुमान जी वानर रूप में भी संसार में पूजित हैं। इस जगत् में बुरे संग से सदैव हानि और अच्छे संग से लाभ होता है।

(3) तृतीय दिवस—इस दिन अयोध्याकांड में संत व असंत के स्वभाव पर चर्चा की गई और इसमें भगवान श्रीराम के संत व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डाला गया। गोस्वामी तुलसीदास जी के अनुसार संत व्यक्ति भगवान की कथाओं में बड़ी रुचि लेते हैं और उनके हृदय में भगवान का निरंतर वास होता है; जबकि असंत व्यक्ति भगवान की कथाओं को कहने में बाधा डालते हैं और इसे सुनने में अपनी अरुचि दरसाते हैं। संत व्यक्ति अपने मुख से सदैव शुभ वचन बोलते हैं; जबकि असंत व्यक्ति अपने मुख से अशुभ व कठोर वचन बोलने के अभ्यस्त होते हैं।

संत व्यक्तियों के मन में काम, क्रोध, मद, अभिमान व मोह नहीं होता और न ही लोभ, क्षोभ, राग, द्वेष, कपट, दंभ व माया का वास होता है। जबकि असंत व्यक्तियों के मन में इन विकारों का गहराई से वास होता है। संत व्यक्ति दूसरों के लिए प्रिय होते हैं और सदैव सबका हित करते हैं; जबकि असंत व्यक्ति दूसरों के लिए अप्रिय होते हैं और ये सदैव दूसरों का अहित करते हैं।

संत व्यक्ति दूसरे की संपत्ति देखकर हर्षित होते हैं और दूसरे को विपत्ति में देखकर विशेष रूप से दुःखी होते हैं। जबकि असंत व्यक्ति दूसरों की संपत्ति देखकर दुःखी होते हैं और दूसरों को विपत्ति में देखकर अत्यंत हर्षित होते हैं।

भगवान राम के संत स्वभाव के बारे में गोस्वामी जी कहते हैं कि श्रीरघुनाथ जी का स्वभाव विषाद और हर्ष से रहित है। इन्हें राज्य का लोभ नहीं है और भरत पर उनका बड़ा ही प्रेम है। श्रीराम का स्वभाव शत्रु के लिए भी अनुकूल है और इनका स्वभाव अत्यंत कोमल और करुणामय है। पुरवासी, कुटुंबी, गुरु, पिता-माता सभी को भगवान राम का स्वभाव सुख देने वाला है और उनके स्वभाव की शत्रु भी बड़ाई करते हैं।

(4) चतुर्थ दिवस—इस दिन भी अयोध्याकांड में संत व असंत के स्वभाव पर चर्चा की गई तथा भरत के संत स्वभाव पर प्रकाश डाला गया। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि संत व्यक्ति नीतिवान, वैराग्यवान व सरल स्वभाव के होते हैं और इनके हृदय में भक्ति का सहज वास होता है। ये कभी किसी का अहित नहीं करते और न ही किसी को पीड़ा पहुँचाते हैं। ये सदैव दूसरों की भलाई करने में लगे होते हैं और दूसरों का सदैव सम्मान करते हैं।

संत व्यक्ति सत्संग में परम रुचि रखते हैं और सदैव हितकारी वचन बोलते हैं। ये मान-बड़ाई, भय, ईर्ष्या, लोभ, मोह, काम-क्रोध, अहंकार से परे होते हैं। जबकि असंत व्यक्ति अनीति को अपनाने वाले व क्रूर स्वभाव के होते हैं, ये अपने माता-पिता व पुत्र को मारने में भी संकोच नहीं करते हैं। ये गोशाला व ब्राह्मणों के नगर तक जलाने से नहीं हिचकते। ये स्वार्थवश स्त्री व बालक तक की हत्या कर देते हैं और मित्र व राजा को जहर देने में संकोच नहीं करते तथा मन, कर्म व वचन से पापकर्मों में लगे रहते हैं।

दुष्ट व्यक्ति भगवान की भक्ति छोड़कर भयानक भूत-प्रेतों को भजते हैं। ये लोग वेदों को बेचते हैं, धर्म को दुह लेते हैं और दूसरों के पापों का बखान करते हैं। असंत व्यक्ति कपटी, कुटिल, कलहप्रिय व क्रोधी स्वभाव के होते हैं, ये वेदों की निंदा करने वाले और विश्व भर के विरोधी होते हैं। ये लोभी, लंपट व लालचियों का आचरण करने वाले होते हैं और पराये धन व पराई स्त्री की ताक में रहते हैं।

ऐसे लोगों का सत्संग में प्रेम नहीं होता और परमार्थ के मार्ग से भी विमुख होते हैं। ये मनुष्य शरीर पाकर भी श्रीहरि का भजन नहीं करते और इन्हें हरि-हर का सुयश भी नहीं सुहाता। दुष्ट व्यक्ति एक प्रकार से ठग होते हैं और ये सुंदर वेष बनाकर जगत् को छलते हैं। दुष्ट व्यक्ति सब प्रकार से दूसरों का अनिष्ट करते हैं, ये केवल अपने ही शरीर का पोषण करते हैं और बहुत ज्यादा निर्दयी होते हैं।

भरत के संत स्वभाव के बारे में भी गोस्वामी जी कहते हैं। भरत सब प्रकार से साधु स्वभाव के हैं और श्रीरामचंद्र के चरणों में इनका अथाह प्रेम है। भरत का प्रेम,

वैराग्य, नियम, व्रत और धर्म निष्कपट यानी सच्चा है और ये बड़ों के आज्ञाकारी हैं। ये नीतिपरायण और उत्तम पुरुष हैं। ये केवल गुणों को ग्रहण करते हैं और अवगुणों को सहजता से त्याग देते हैं। भरत संपूर्ण धर्मों की धुरी को धारण करने वाले हैं, यानी ये धर्म के प्रतीक हैं। भरत मोह-ममता से परे हैं, इनके शील, गुण, नम्रता, बड़प्पन, भाईपन, भक्ति और अच्छेपन का वर्णन करने में सरस्वती की बुद्धि भी हिचकती है, यानी इसका वर्णन संभव नहीं है।

(5) पंचम दिवस—इस दिन अरण्यकांड में संत व असंत के स्वभाव पर चर्चा की गई। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार—संत व्यक्तियों का हृदय अत्यंत निर्मल व कोमल होता है; जबकि दुष्ट व्यक्तियों का हृदय अत्यंत निर्दय व कठोर होता है और इनका व्यवहार प्राय: छलपूर्ण होता है। सज्जन लोग जो कभी किसी का अहित नहीं करते, उनका भी अहित करने, उनके साथ दुर्व्यवहार व छल करने का प्रयास दुष्ट व्यक्ति करते हैं। संत व्यक्ति अभिमानरहित, निष्कपट, शीलवान, वैराग्यवान, संतोषी, परदोषों को न देखने वाले, भगवान पर भरोसा रखने वाले, दूसरों को मान देने वाले, धर्म के ज्ञान व आचरण में निपुण, धैर्यवान, सरल स्वभाव वाले व समदर्शी होते हैं; जबकि सज्जन लोगों के साथ छल करने के लिए दुष्ट व्यक्ति अपना रूप व स्वभाव बदलकर आते हैं।

संत व्यक्ति जितेंद्रिय, कामनारहित, पापरहित, निश्चल यानी स्थिरबुद्धि, सर्वत्यागी, बाहर-भीतर से पवित्र, ज्ञानवान, सत्यनिष्ठ, विद्वान व योगी होते हैं। जबकि दुष्ट व्यक्ति यदि नम्रता भी दिखलाते हैं या मीठी वाणी बोलते हैं, तो इसके पीछे उनका निहित स्वार्थ होता है। अत: दुष्ट लोगों की विनम्रता और मीठी वाणी उनके किसी आगंतुक षड्यंत्र की सूचक होती है, जो कि व्यक्ति को दु:ख व कष्ट देने वाली होती है।

संत व्यक्ति गुणों की खान होते हैं। जबकि असंत व्यक्ति अवगुणों का भंडार होते हैं। संत व्यक्ति दंभ, अभिमान व मद से रहित होते हैं और भूल कर भी कुमार्ग पर पैर नहीं रखते। जबकि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि दुष्ट व्यक्तियों के स्वभाव के अभिन्न अंग होते हैं और ये सदैव कुमार्ग पर चलते हैं। संत व्यक्तियों के हृदय में भगवान का वास होता है, इसलिए वे सदैव भगवान का स्मरण करते रहते हैं। जबकि दुष्ट व्यक्तियों के हृदय में सांसारिक छल-प्रपंच का निवास होता है और इसी कारण वे छल-प्रपंच में रुचि रखते हैं।

(6) षष्ठ दिवस—इस दिन किष्किंधाकांड में संत व असंत के स्वभाव पर चर्चा की गई। गोस्वामी तुलसीदास इस प्रकरण में कहते हैं कि संत जनों में इतनी सहनशीलता होती है कि वे दुष्टों के वचनों को सहन करने के लिए अपने हृदय को पाषाण के सदृश बना लेते हैं। जिस प्रकार पर्वत

अमेरिका में उन दिनों महिलाओं को बहुत स्वतंत्रता नहीं थी और उन्हें स्कूल-कॉलेज शिक्षा ग्रहण करने नहीं भेजा जाता था। वहीं एक छोटे शहर के पादरी की पत्नी लिलियन ने जब लड़कियों के एक स्कूल को बनवाने के लिए प्रयास प्रारंभ किए तो नगर में विरोध प्रदर्शन प्रारंभ हो गए।

लिलियन निडरता के साथ विरोधियों की सभा में पहुँचीं और बोलीं—"यह आप लोगों का भ्रम है कि सुशिक्षित महिलाएँ पुरुषों का विरोध करेंगी। विरोध का कारण संकीर्णता होती है, शिक्षा नहीं। महिलाओं का उत्थान हुए बिना देश व समाज का विकास संभव नहीं है। मेरी आपसे विनती है कि इस नेक कार्य का विरोध न करें।" उसके शब्द विरोधियों के हृदय को छू गए और उनका विरोध, सहयोग में परिवर्तित हो गया।

वर्षा की बूँदों का आघात सह लेते हैं, उनमें पानी की एक बूँद तक प्रवेश नहीं कर पाती, उसी प्रकार संतों के हृदय में दुष्ट व्यक्तियों के वचनों का प्रवेश नहीं हो पाता।

यद्यपि संत व्यक्तियों का हृदय ज्ञान से परिपूर्ण होता है, इसलिए वे अंदर से अत्यंत विनम्र स्वभाव के होते हैं, लेकिन इसी ज्ञान के कारण उनमें सहनशीलता होती है और वे दुष्टों के कठोर वचनों को भी सहजता से सह लेते हैं, जिस तरह वर्षा की बूँदों के आघात से पर्वत चोटिल नहीं

होता, उसी प्रकार दुष्ट जनों के कठोर वचनों से संत जन अप्रभावित रहते हैं।

संत व्यक्तियों को सद्गुण प्रिय होते हैं और वे सद्गुणों को ही सदैव अपनाते हैं; जबकि असंत व्यक्तियों को अवगुण प्रिय होते हैं, वे अवगुणों को अपनाते हैं और उन्हें अपने स्वभाव का अंग बनाते हैं। संत व्यक्ति सदैव सच्चाई का सामना करते हैं और झूठ का, गलत का विरोध करते हैं। जबकि असंत व्यक्ति झूठ का, गलत का साथ देते हैं और सच्चाई को छिपाते हैं, उससे मुँह फेर लेते हैं। संत व्यक्ति निर्मल मन के होते हैं, ये कभी किसी को धोखा नहीं देते, किसी के साथ छल नहीं करते; जबकि असंत व्यक्ति मन में कुटिलता रखते हैं। इसलिए ये किसी के साथ भी छल करते हैं और उसे धोखा भी दे देते हैं।

(7) सप्तम अध्याय—इस दिन सुंदरकांड व लंकाकांड में संत व असंत के स्वभाव पर चर्चा की गई। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार—संतों का क्षणमात्र भी सत्संग महान फल देने वाला होता है; जबकि दुष्टों का निरंतर संग भी संत व्यक्ति के गुण-स्वभाव को बदल नहीं पाता, अपितु संतों के अच्छे स्वभाव से वह प्रभावित होता है। दुष्टों के संग से कुमार्ग पर चलने पर व्यक्ति के आत्मतेज, बल, बुद्धि व उसके पुण्यों का नाश होता है; जबकि संत व्यक्ति के संग से किसी भी कार्य में हानि नहीं, बल्कि लाभ ही होता है और भगवान की कृपा के बिना संतों का संग नहीं होता।

संतों का अपमान, तिरस्कार करने से व्यक्ति के पुण्यों का नाश होता है और उसकी सब तरह से हानि होती है। संत पुरुष काम, क्रोध, लोभ, मोह को त्यागकर भगवान की भक्ति करते हैं और उनकी यही बड़ाई है कि वे बुराई करने पर भी बुराई करने वाले की भलाई ही करते हैं। संत पुरुष भलाई करने के अपने स्वभाव से नहीं चूकते और असंत पुरुष बुरा करने के अपने स्वभाव को नहीं त्यागते।

संत व्यक्ति हृदय से सच्चा होता है, निर्मल मन का होता है, और इसी कारण वह भगवान को पाता है। संत व्यक्ति के स्वभाव में छल-कपट नहीं होता। इसके विपरीत असंत व्यक्ति यानी दुष्ट व्यक्ति का स्वभाव छल-कपट से भरा हुआ होता है। उसे भगवान का भजन करना कभी अच्छा नहीं लगता और अपने दुष्ट स्वभाव के कारण वह कभी भी भगवान के सम्मुख नहीं जा पाता और अगर जाता भी है, तो वेश बदलकर, छल करने ही जाता है और कभी अपना असली भेद नहीं बताता। कई बाधाएँ आने पर भी संतों का हृदय नीति नहीं त्यागता; जबकि दुष्टों का हृदय किसी भी परिस्थिति में अनीति नहीं त्यागता।

(8) अष्टम दिवस—इस दिन उत्तरकांड में संत व असंत के स्वभाव पर चर्चा की गई। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार—संत व्यक्ति कमल के पुष्प की तरह पवित्र व कोमल स्वभाव के होते हैं। ये अभिमानरहित व सबको सम्मान देने वाले होते हैं। बड़े सौभाग्य व पुण्य से संतों के दर्शन होते हैं और इनके दर्शन मात्र से व्यक्ति के पाप नष्ट होते हैं। संत व्यक्तियों के संग से व्यक्ति की सद्बुद्धि जाग्रत होती है, जबकि दुष्ट व्यक्तियों के संग से व्यक्ति की दुर्बुद्धि जाग्रत होती है।

संत व असंत व्यक्ति अपने गुण-कर्म-स्वभाव को कभी नहीं त्यागते। अपने सद्गुणों, शुभ कर्म व अच्छे स्वभाव के कारण संत व्यक्ति समाज में प्रतिष्ठा पाते हैं और अपने अवगुणों, अशुभ कर्म व बुरे स्वभाव के कारण दुष्ट व्यक्ति दंड पाते हैं।

संत व्यक्तियों के मन में कोई कामना नहीं होती, सारा जगत ही इनका मित्र होता है और इनके मन में शांति-वैराग्य, विनय व प्रसन्नता का वास होता है; जबकि दुष्ट व्यक्तियों के मन में सदैव कामना का वास होता है और सारा जगत् इन्हें अपने शत्रु समान प्रतीत होता है और इनके मन में अशांति, आसक्ति, कठोरता व क्षुब्धता का वास होता है।

संत व्यक्ति नियम व नीति से कभी विचलित नहीं होते और अपने मुख से कभी कठोर वचन नहीं बोलते; जबकि असंत व्यक्ति नियमों का उल्लंघन करते हुए सदैव अनीति की राह पर चलते हैं और अपने मुख से सदैव कठोर वचन ही बोलते हैं, जो दूसरों को आहत करते हैं। संतों का संग करना सुखद और असंतों का संग करना दु:खद व कष्टप्रद होता है। अत: इस संसार में संतों का संग करना ही लाभकारी है और दुष्टों से दूरी बना लेना ही व्यक्ति के हित में है।

(9) नवम दिवस—इस दिन भी उत्तरकांड में संत व असंत के स्वभाव पर चर्चा की गई और श्रीरामचरितमानस में संत एवं असंत के स्वभाव का सार भी बताया गया। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार—संत व्यक्तित्व चंदन के समान सुगंधित, गुणों से भरपूर व सदैव दूसरों को लाभ ही पहुँचाते हैं और असंत व्यक्तित्व कुल्हाड़ी के समान कठोर, धारदार व सदैव दूसरों को हानि व कष्ट पहुँचाते हैं। इस

संसार में संतों का संग सद्विवेक जगाने वाला, सन्मार्ग पर चलाने वाला व जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति का मार्ग दिखाने वाला होता है और असंतों का संग दुर्बुद्धि जगाने वाला, कुमार्ग पर चलाने वाला व संसार के चक्र में फँसाने वाला होता है।

संत व्यक्ति सबके साथ भलाई करते हैं, जो उनकी बुराई करता है, उसकी भी भलाई करते हैं। जबकि असंत व्यक्ति बुरा करने वालों के साथ बुरा बरताव तो करते ही हैं, साथ ही जो व्यक्ति उनकी भलाई करता है, उसके साथ भी वे बुरा ही करते हैं। संत व्यक्ति सच्चे हृदय के होते हैं, वे सदैव हितकारी वचन बोलते हैं। यदि वे कड़ुआ बोलते भी हैं, तो इसमें कुछ-न-कुछ हित होता है। जबकि असंत व्यक्ति का हृदय कठोर होता है। वे यदि मीठे वचन बोलते भी हैं, तो इसमें भी दूसरों का कुछ-न-कुछ अहित छिपा होता है।

संत व्यक्ति कभी किसी का हक नहीं लेते, बल्कि अपना हक भी दूसरों को दे देते हैं; जबकि असंत व्यक्ति अपना हक लेने के साथ-साथ, झूठ का आश्रय लेकर दूसरों के हक पर भी कब्जा कर लेते हैं और अपनी झूठी डींग हाँकते हैं। संत व्यक्ति सदैव उत्थान की ओर बढ़ते हैं और अपने संग से दूसरों का भी उत्थान करते हैं; जबकि असंत व्यक्ति खुद तो पतन की ओर जाते हैं और साथ ही अपने संग से दूसरों को भी पतन की ओर ले जाते हैं। संत व्यक्ति दूसरों से बड़ाई पाकर विनम्र हो जाते हैं और दूसरों का अधिक-से-अधिक भला करने का प्रयास करते हैं; जबकि असंत व्यक्ति दूसरों से बड़ाई पाकर भी सबसे पहले उन्हीं का नुकसान करते हैं।

इस तरह चैत्र नवरात्र 13 से 21 अप्रैल, 2021 में श्रीरामचरितमानस में वर्णित संत व असंत के स्वभाव का विशेष उद्बोधन संपन्न हुआ। ❑

निमाई और रघुनाथ सहपाठी थे, दोनों में घनिष्ठ मित्रता थी। रघुनाथ ने एक ग्रंथ लिखा और समीक्षा के उद्देश्य से निमाई को दिया। कुछ दिनों पश्चात रघुनाथ ने निमाई से उसके संबंध में पूछा तो निमाई ने कहा—"अति उत्तम, त्रुटिहीन।" तब निमाई ने अपना न्यायशास्त्र पर लिखा हुआ एक भाष्य दिखाया। रघुनाथ ने जैसे ही उसकी चंद पंक्तियाँ पढ़ीं, उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। निमाई के बार-बार पूछने पर रघुनाथ बोले—"मित्र! तुम्हारी कृति के सामने मेरी कृति नगण्य है। उसे कोई भी पढ़ना पसंद नहीं करेगा।" "बस, इतनी-सी बात।"—ऐसा कहते हुए निमाई ने अपनी रचना से अपना नाम काटकर रघुनाथ नाम लिख दिया। रघुनाथ ने बहुत मना किया, परंतु निमाई ने कहा—"यह मेरी ओर से उपहार समझकर रख लो।"

रघुनाथ मित्र की महानता व प्रेम से गद्गद हो उठे। कालांतर में निमाई ही चैतन्य महाप्रभु के नाम से सुविख्यात हुए और रघुनाथ की कई कृतियाँ जनमानस का मार्गदर्शन करने में अग्रणी सिद्ध हुईं।

अपनों से अपनी बात

गुरुवर द्वारा प्रदत्त दायित्वों को पूर्ण करने का पर्व

(गुरु पूर्णिमा)

यदि हम मनुष्य को देखें तो उसे देखकर के लगता है कि मनुष्य का जीवन किसी खोज को समर्पित जीवन है। कुछ पाने की, कुछ ऐसा कीमती पाने की कि जिसको पा लेने के बाद फिर कुछ और पाना शेष नहीं रह जाता है—उसको पाने की यात्रा का नाम ही जीवन है। इसीलिए छोटे से बच्चे से लेकर यदि हम मरणासन्न वृद्ध की आँखों में झाँक करके देखें तो हमें लगेगा कि व्यक्ति कुछ पाना चाहता है। गरीब हो या अमीर, राजा हो या रंक, साधु हो या शैतान—उनकी आँखों में पाने की चाहत है, बस, यह ठीक से नहीं पता कि हम क्या चाहते हैं। चूँकि हमें यह नहीं पता कि हम पाना क्या चाहते हैं, हम उसे ढूँढ़ते और तलाशते हर जगह हैं।

जब व्यक्ति एक बच्चा होता है तो उसकी यह तलाश परियों की कहानियों में, कॉमिक्स कथाओं में, खेल-खिलौनों में उसे उलझाकर रखती है और जब वही बच्चा बड़ा हो जाता है तो बस उन सपनों के, खेल-खिलौनों के नाम भर बदल जाते हैं, पर तलाश यथावत् रहती है। खिलौनों की जगह गाड़ियाँ ले लेती हैं और सपनों में फंतासी घटनाक्रमों की जगह पदप्राप्ति, पैसा, प्रतिष्ठा—ये आ जाते हैं। सिर्फ नाम, रूप और आकार बदल जाते हैं, पर यह दौड़ यथावत् बनी रहती है। एक दिन बहुत दौड़ने के बाद जब व्यक्ति को पैसा भी मिल जाता है, पद भी मिल जाता है, प्रतिष्ठा भी मिल जाती है, उस दिन व्यक्ति देखता है कि जिस दिन ये सब मिले, उसी दिन ये पुराने भी हो जाते हैं; क्योंकि इन सपनों में कोई भी सपना स्थायी नहीं है।

यह संसार इन्हीं अतृप्त कामनाओं का और निरर्थक सपनों का संसार है। ऐसा इसलिए कि इस भाग-दौड़ में व्यक्ति यह भी नहीं जान पाता कि आखिर हम पाना क्या चाहते हैं? यदि यह हमें पता होता तो पैसा मिलने के साथ और घर बनने के साथ मन संतुष्ट होकर बैठ गया होता, पर ऐसा होता कहाँ है? यदि लोग अपने आप से पूछें कि वो क्या चाहते हैं तो उत्तर देना कठिन हो जाएगा; क्योंकि इनसान की पाने की इच्छाएँ सुबह से शाम में हजार बार बदल जाती हैं। सुबह से शाम तक हमारी चाहतें हजारों हो जाती हैं तो स्वाभाविक है कि इसी कारण, संसार का फैलाव भी अनंत गुना हो जाता है। जितनी चाहतें हैं, उतनी दौड़ें हैं, जितनी दौड़ें हैं, उतने कर्म हैं, जितने कर्म हैं, उतने बंधन हैं और जितने बंधन हैं, उतने ही जीवन हैं और इसीलिए यह दौड़ अनंतकाल तक चलती रह जाती है और उसका कभी कोई सार्थक निष्कर्ष नहीं निकल पाता है।

सत्य यह है कि इनसान जो पाना चाहता है, उसका नाम है परमात्मा। परम का अर्थ ही यह है कि जिसके बाद कुछ और शेष न रह जाए। चाहते हैं हम परमात्मा को पाना, पर ढूँढ़ते हम उसे संसार में हैं। संसार के इन झगड़ों, झमेलों और झंझटों में व्यक्ति परमात्मा से दूर ही होता चला जाता है। संसार की इन विडंबनाओं के मध्य जो परमात्मा को पाने में सहारा बनता है, इस भवकूप से निकलने में जो रस्सी बनता है, इस तूफान से पार निकलने में जो नाव बनता है, वो ही सद्गुरु कहलाता है।

सद्गुरु वो होता है, जिससे मिलते ही जीवन में रूपांतरण शुरू हो जाता है, जिसका स्पर्श पाते ही जीवन की दिशा बदल जाती है। सद्गुरु से जुड़ पाने का नाम ही उपासना है, उनके पथ का अनुसरण करना ही साधना है, उनके समीप बैठना ही सत्संग है, उनके लिखे को पढ़ना ही स्वाध्याय है और उनके कहे को करना ही अध्यात्म है।

शांतिकुंज की स्थापना एक ऐसी ही महानतम विभूति ने, दैवी व्यक्तित्व ने की, जिनका जीवन अलौकिक प्रकाश से नहाया हुआ था। निर्मल हृदय, स्फटिक जैसा चरित्र, संतों जैसा निष्कपट आचरण, महापुरुषों जैसी गंभीरता—ये सारे अवतारी चेतना वाले गुण एक साथ एक ही व्यक्तित्व में अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलते। मानव के शरीर में महामानव, नर के शरीर में नारायण उनके अवतरित होने की घटनाएँ लोग पुराणों में पढ़ते हैं, इतिहास में पढ़ते हैं, गाथाओं-आख्यानों में उनका उल्लेख उनको देखने को मिलता है, पर

इन्हीं चर्म चक्षुओं से उनको देखने का सौभाग्य, उनका शिष्य बन पाने का सौभाग्य, उनका अनुगामी बन पाने का सौभाग्य तो उन विरलों को ही नसीब हो पाता है—जिनके जन्म-जन्मांतर के पुण्य एक साथ फलित हो गए हों।

शांतिकुंज की स्थापना के इन 50 वर्षों बाद आज हमें स्वयं को मिले इस सौभाग्य को याद करने की आवश्यकता है। हम उन सौभाग्यशालियों में से एक हैं जिन्होंने भगवान को अपनी आँखों से देखा है, उनके स्नेह-सान्निध्य को प्राप्त किया है, उनके विचारों की अग्नि से प्रदीप्त हुए हैं। इतने पर भी हम भाग्यविहीन कहलाएँगे यदि हम उनकी योजना को आगे बढ़ाने का साहस आज न दिखा सके। प्रकाश होने पर भी यदि हम आँखें भींचकर बैठ जाएँ, अनुग्रह बरसता दिखने पर भी हम यदि हाथ सिकोड़कर बैठ जाएँ, घटाएँ उमड़ें पर हमारे पात्र खाली रह जाएँ, हम अवतारी सत्ता से जुड़ें, पर हमारे जीवन में कोई रूपांतरण न हो पाए, हम जैसे थे, वैसे-के-वैसे रह जाएँ तो ऐसा होना भी किसी दुर्भाग्य से कम नहीं कहा जाएगा। ऐसा होना भाग्यविहीन होने की श्रेणी में आएगा।

गुरु पूर्णिमा (24, जुलाई) का ये पर्व यह ही याद रखने का पर्व है कि इस अवसर पर हमें अपने शिष्यत्व को भी प्रदर्शित करना है। बादल बरसते हैं तो उनके बरसने का लाभ टीलों और चट्टानों को नहीं मिल पाता, पर गड्ढों को मिल जाता है। अनुग्रह को प्राप्त करने के अधिकारी सत्पात्र ही बन पाते हैं। भगवान राम के दर्शन का सौभाग्य अनेकों को मिला होगा, पर हर कोई हनुमान नहीं बन पाया। भगवान बुद्ध के प्रवचन अनेकों ने सुने होंगे, पर हर कोई आनंद नहीं बन पाया। सद्गुरु के पास जाने और उनसे जुड़ने में महत्त्वपूर्ण बात दर्शन नहीं, संपर्क होता है और संपर्क तब होता है, जब हृदय के तार गुरु से जुड़ते हैं।

यह पर्व शांतिकुंज की स्थापना के 50 वर्ष होने की शुभ घड़ी में आया है। इस पर्व पर परमपूज्य गुरुदेव एवं परम वंदनीया माताजी से अपने हृदय के तारों को गहरा जोड़ लेने की महती आवश्यकता है और उस उद्देश्य को पूरा करने के लिए प्राणपण से आगे बढ़ने की आवश्यकता है, जिस उद्देश्य को लेकर शांतिकुंज की स्थापना गुरुदेव ने की थी। बच्चों का दायित्व पिता के छोड़े गए कार्यों को पूर्ण करना होता है। शांतिकुंज की स्थापना जिस उद्देश्य को लेकर की गई थी वो उद्देश्य विश्व के नवनिर्माण, मनुष्य के भावनात्मक नवनिर्माण का था।

आज पूरे संसार में शोक-संताप का, कलह-क्लेश का, दु:ख-दारिद्र्य का जो वातावरण सब ओर फैला हुआ है—यदि ये ऐसा ही बना रहा तो समाज की उलझनें शायद ही कभी सुलझ सकें। यदि लोगों के मन मैले-के-मैले रह गए, मान्यताएँ यों ही विकृत-की-विकृत रह गईं, दृष्टिकोण खराब-के-खराब रह गए तो धरती नरक ही बनी रहेगी। यदि मनुष्य में देवत्व के उदय एवं धरती पर स्वर्ग के अवतरण के शांतिकुंज स्थापना के संकल्प को पूर्ण करना है तो मनुष्य के मन में छिपी हुई निकृष्टता को हटाकर वहाँ उत्कृष्टता का समावेश करने की गंभीर जरूरत है। इस वर्ष का गुरुपूर्णिमा का पर्व यही संकल्प हमारे मन में जगाकर जा रहा है। ❑

जीव पहले अज्ञानी बना रहता है। ईश्वरबुद्धि नहीं रहती, वरन नाना वस्तुओं की बुद्धि, अनेक चीजों का बोध रहता है। जब ज्ञान होता है, तब उसकी समझ में आता है कि ईश्वर सभी भूतों में है। जिस प्रकार पैर में काँटा चुभता है तो एक और काँटे को ढूँढ़कर उससे वह काँटा निकाला जाता है अर्थात ज्ञानरूपी काँटे के द्वारा अज्ञानरूपी काँटे को निकाल बाहर करना। फिर विज्ञान होने पर अज्ञान-काँटा और ज्ञान-काँटा, दोनों को ही फेंक देना। उस समय केवल दर्शन ही नहीं होता, वरन ईश्वर के साथ रात-दिन बातचीत चलती रहती है।

—स्वामी रामकृष्ण परमहंस

सादर समर्पित श्रद्धा हमारी

गुरुवर! नमन है तुमको, हे पाप-ताप हारी।
तन-मन सहित समर्पित, उर भावनाएँ सारी॥

संकेत पर चलेंगे, लेकर तुम्हारा संबल,
अनुशासन पालन करके, बाँटेंगे प्यार निश्छल,
हमको सदा निभानी, है अपनी जिम्मेदारी।
तन-मन सहित समर्पित, उर भावनाएँ सारी॥ 1॥

हमने किया विसर्जन, अधिकार आपका है,
तुमने हमें सँवारा, आभार आपका है,
श्रद्धा सहित समर्पित, है जिंदगी हमारी।
तन-मन सहित समर्पित, उर भावनाएँ सारी॥ 2॥

हम अंग-अवयव बनकर, पीड़ा-पतन हरेंगे,
होगी जहाँ तमिस्त्रा, दीपक वहीं जलेंगे,
फूले-फले खुशी से, वसुधा हमारी प्यारी।
तन-मन सहित समर्पित, उर भावनाएँ सारी॥ 3॥

हम चल पड़े हैं जग में, संकल्प पूरा करने,
गुरुदेव! आपकी ही, आकांक्षा पूरी करने,
सादर समर्पित श्रद्धा-निष्ठा प्रखर हमारी।
तन-मन सहित समर्पित, उर भावनाएँ सारी॥ 4॥

—विष्णु कुमार शर्मा 'कुमार'

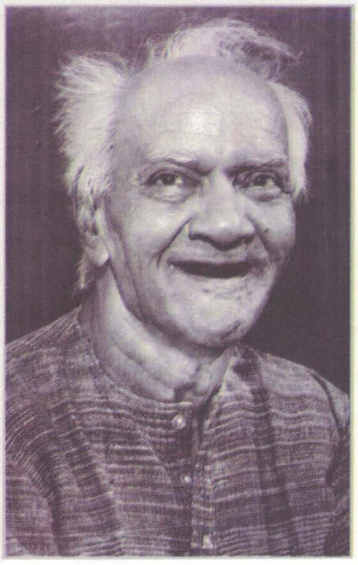

गुकारस्त्वन्धकारस्तु रुकारस्तेज उच्यते ।
अन्धकार निरोधत्वात् गुरुरित्यभिधीयते ॥

'गु' कार याने अंधकार
और 'रु' कार याने तेज;
जो अंधकार का
(ज्ञान का प्रकाश देकर)
निरोध करता है,
वही गुरु कहा जाता है ।

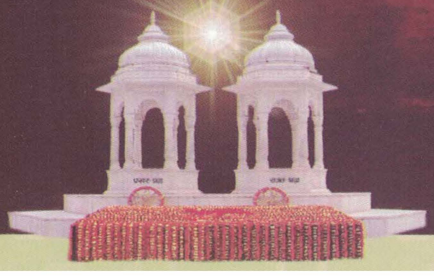

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01-06-2021
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

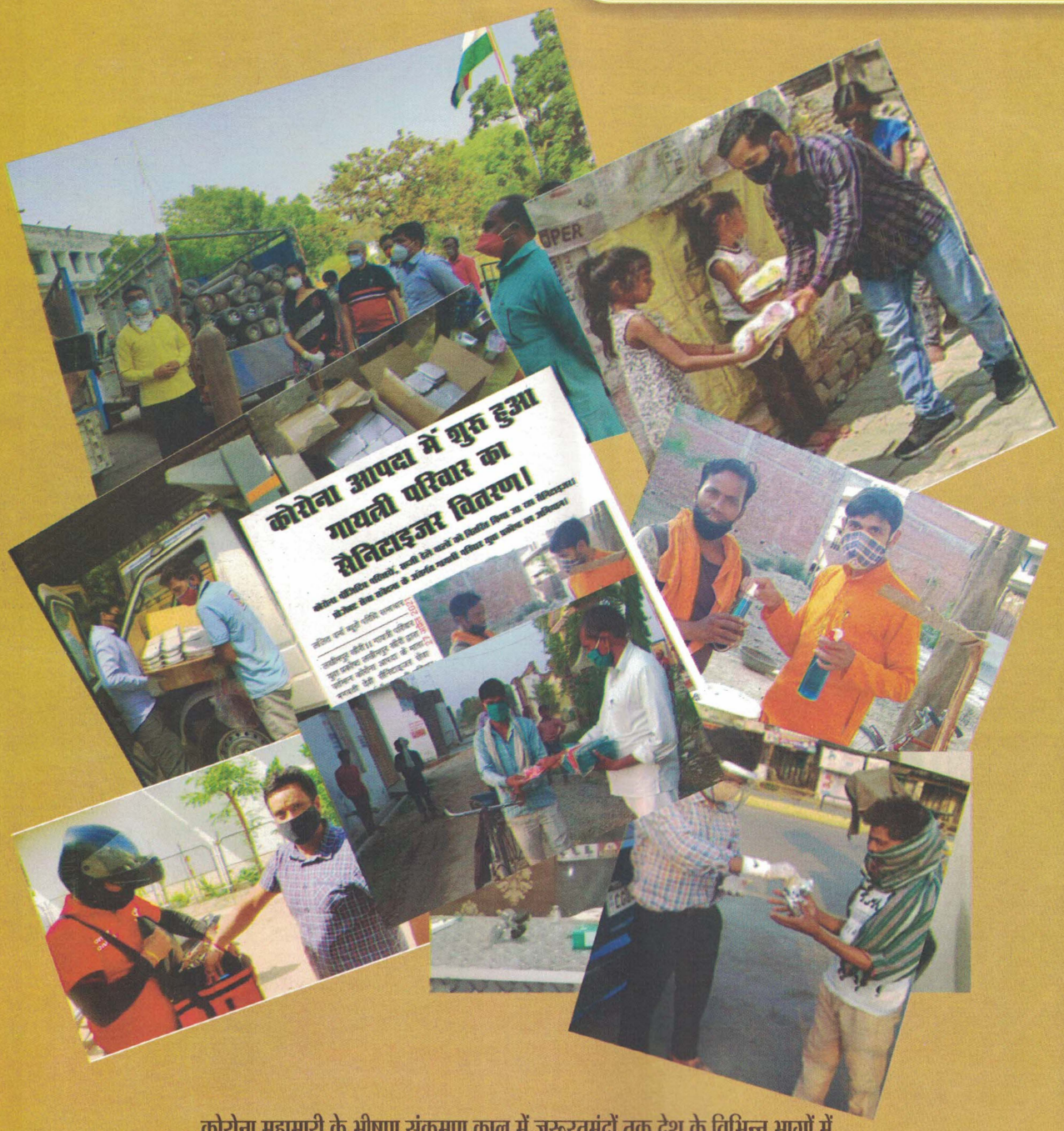

कोरोना महामारी के भीषण संक्रमण काल में जरूरतमंदों तक देश के विभिन्न भागों में
राहत एवं जीवनरक्षक सामग्री के वितरण में संलग्न गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ता

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष–0565-2403940, 2402574 , 2412272, 2412273 मोबा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org